THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL LIBRARY

OU_180769

UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H82/V31 Sa Accession No. Gn.H.1929

Author वर्मा, रामकुमार।

Title स्वप्नकिरण।1947

This book should be returned on or before the date last marked below.

सप्तकिरण

सप्तकिरण

(सात एकांकी)

डॉ. राम कुमार वर्मा

नेशनल इन्फ़रमेशन ऐण्ड पब्लिकेशन्स लिमिटेड, बम्बई.

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण १९४७

मूल्य : ३ रु.

नेशनल इन्फ़रमेशन ऐंड पब्लिकेशन्स लिमिटेड, नेशनल हाउस, ६, तुलक रोड, अपोलो बंदर, बम्बई–१, के लिए **कुसुम नैयर** द्वारा प्रकाशित और **वि. पु. भागवत** द्वारा **मॉडर्न प्रिंटिंग ब्यूरो,** गिरगांव, बम्बई–४, में मुद्रित

समर्पण

पूज्य भाई
रघुवीर प्रसाद जी की
स्मृति में.

दो शब्द

मेरे सात एकांकी नाटक आपके सामने हैं। इन नाटकों की रचना में आप सात अलग-अलग दृष्टिकोण पावेंगे। मैंने मानव जीवन की अन्तर्व्यापिनी समवेदनाओं को घटनाओं के संघर्ष में उभारने की चेष्टा की है। संवादों की रूपरेखा एकमात्र मनोविज्ञान द्वारा खींची गई है।

इन में प्रायः सभी नाटक अभिनय की कसौटी पर कसे जा चुके हैं। कुछ तो रेडियो द्वारा प्रसारित भी हुए हैं; 'ध्वनि नाट्य' के रूप में भी ये नाटक मान्य हुए हैं। अपने पिछले नाटकों की अपेक्षा, इन नाटकों में मैंने रंगमंच की सुविधा का अधिक ध्यान रक्खा है। मैं इस संबंध में अपने मान्य कलाकारों की सम्मति चाहता हूँ।

नेशनल इन्फरमेशन ऐंड पब्लिकेशन्स लिमिटेड का मैं कृतज्ञ हूँ जिसके द्वारा मेरे नाटकों का यह संग्रह अत्यंत आकर्षक और सुरुचिपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया जा रहा है।

साकेत, प्रयाग।
१० मार्च, १९४७

—राम कुमार वर्मा

नाटकों का क्रम

		पृष्ठ
१.	राजरानी-सीता	१
२.	औरंगज़ेब की आख़िरी रात	२०
३.	पुरस्कार	४६
४.	कलाकार का सत्य	७७
५.	फ़ेल्ट हैट	९४
६.	छोटी-सी बात	१२६
७.	आँखों का आकाश	१४५

धार्मिक दृष्टिकोण से—

राजरानी सीता

पात्र परिचय :

स्त्री पात्र
- **राजरानी सीता**—महाराज राम की पत्नी
- **मन्दोदरी**—राजा रावण की पत्नी
- **विचित्रा**—
- **सौदामिनी**—
- **चित्रा**—
- **सुलेखा**—
- **त्रिजटा**—

(राजा रावण की दासियां)

पुरुष पात्र
- **हनुमान**—महाराजा राम के दूत
- **रावण**—लंका का अधिपति

स्थान— अशोक वाटिका

[अशोक वृक्ष के नीचे महारानी सीता शोकमग्न मुद्रा मे बैठी हुई हैं। उनके समीप एक दासी, विचित्रा, बैठी है। नैपथ्य में शंख और घंटों की ध्वनि हो रही है। आज रावण ने एक बहुत बडा महोत्सव भगवान शंकर के मंदिर में किया है। धीरे धीरे यह ध्वनि क्षीण होती है और फिर सम्मिलित स्वर में सुनाई पड़ता है: महादेव शंकर की जय!... भगवान त्रिपुरारी की जय! ... महाराजाधिराज रावण की जय! ... यह ध्वनि धीरे धीरे मंद होती हुई वायु में विलीन हो जाती है। ऐसा ज्ञात होता है जैसे जय ध्वनि करनेवाले मंदिर से बाहर जा रहे हैं। जय ध्वनि के वायु में विलीन होते-होते महारानी सीता के कंठ से एक गहरी सिसकी निकल उठती है।]

विचित्रा : महारानी, आज महादेव शंकर के मंदिर में महाराजाधिराज रावण ने दसवाँ उत्सव मनाया है। आपने राजाधिराज रावण की जय नहीं बोली ? [महारानी सीता फिर सिसकी भरती हैं और सिसकी भरते हुए करुण शब्दों में कहती हैं] महा . .राजाधिराज. . राम की. . जय !

विचित्रा–महाराजाधिराज राम की जय ! अब भी आपने महाराजाधिराज राम की जय कहना नहीं छोड़ा ? आज दस मास बीत गये। आपको पाने के लिए महाराज ने भगवान शंकर के मंदिर में दस उत्सव किये, आपने दस बार क्या, एक बार भी महाराज रावण की जय नहीं कही ?

सीता : कपट मृग के पीछे महाराज श्री राम जिस प्रकार धनुष बाण लेकर दौड़े थे–भौहें कसी हुई थीं, नेत्र कुछ-कुछ लाल हो रहे थे, दृष्टि स्थिर थी, नीचे का होंठ दांतों से दबा हुआ था, मुख पर कुछ पसीने

के बिन्दु झलक रहे थे–ऐसे श्रीराम की शोभा की–ऐसे श्रीराम की जय! एक बार नहीं–दस बार जय!

विचित्रा : आप जानती हैं इस हठ का क्या परिणाम होगा ?

सीता : मैं उस परिणाम के लिए व्याकुल हूँ बहिन! यदि शरीर से श्रीराम के दर्शन न कर सकूं तो प्राण से ही उनके समीप पहुँच सकूँ! महाराज श्रीराम से जाकर कौन कहे कि तुम अभी तक नहीं आए और सीता तुम्हारे विरह में...[सिसकियां]

[तीन दासियों का प्रवेश। इनका नाम क्रमशः सौदामिनी, चित्रा और सुलेखा है।]

सौदामिनी : महारानी, महाराज रावण इधर ही आ रहे हैं। विचित्रा, तू बाहर जाकर महाराज का स्वागत कर।

विचित्रा : बहुत अच्छा। [प्रस्थान]

चित्रा : [महारानी सीता से] महारानी, आप सिसकियाँ क्यों भर रही हैं? आज तो उत्सव का दिन है। महाराजा रावण ने आज भगवान शंकर की पूजा कर स्वयं वेद–पाठ किया है।

सुलेखा : और पूजा करने के पूर्व महाराज ने आज्ञा की थी कि आज महारानी सीता का शृंगार हो।

सीता : जिसके हृदय में राम हैं, उसके शृंगार की आवश्यकता नहीं है।

सौदामिनी : राम का स्मरण करते हुए आप थकती नहीं? आज आप इस नाम को भूल जायँ। इस समय महाराज रावण का नाम सबसे ऊंचा है। ओफ़, आज महाराज की कितनी भव्य मूर्ति थीः मस्तक पर त्रिपुंड, भौहों में कितनी कमनीयता, जैसे यज्ञ के धुएं की काली रेखाएं हों! नेत्र यज्ञ के धुएं से कुछ कुछ लाल थे। हाथ में चन्द्रहास तलवार थी। क्यों चित्रा?

चित्रा : और जब उन्होंने चन्द्रहास से अपना मस्तक काट कर भगवान शंकर के सामने अर्पण किया तो उनके कटे हुए सिर के मुख पर

कितनी मधुर मुस्कान थी !

सुलेखा : और चित्रा, कितने आश्चर्य से हम लोगों ने देखा कि कटे हुए मस्तक के नीचे से दूसरा सिर फिर से महाराज के गले पर सुसज्जित हो गया है, यह प्रताप भगवान शंकर का है। क्यों सौदामिनी ?

सौदामिनी : महाराज की भक्ति का नहीं है ? वे कितने बड़े भक्त हैं, यह तो सारा संसार जानता है । जब उन्होंने एक बार शंभु सहित सफ़ेद कैलास पर्वत उठाया तो ऐसा मालूम हुआ जैसे आकाश रूपी नीले सरोवर में महाराज के हाथ रूपी कमल पर हंस शोभायमान हो रहा है। बिना ऊँची भक्ति के भला कोई भक्त भगवान शंभु को कैलास पर्वत सहित उठा सकता है ?

चित्रा : यह तो महाराज का बल है सौदामिनी, महाराज की शक्ति और शूरवीरता तो इतनी अधिक है कि जब उन्होंने अपने हाथ से अपना सिर काट कर अग्नि में होम किया तो ब्रह्मा के लिखे हुए मस्तक के लेख महाराज ने अपने नवीन मुख से पढ़े। उनमें लिखा हुआ था कि तुम्हारी मृत्यु नर के हाथों से होगी। महाराज अट्टहास कर हँस पड़े। कहने लगे-बूढ़े ब्रह्मा की बुद्धि भी भ्रष्ट हो गई है। जब शक्तिशाली देवता भी मेरे वश मे हैं तो नर की शक्ति ही कितनी कि वह मेरे सामने खड़ा हो सके ?

सौदामिनी : महारानी सीता, ऐसे शक्तिशाली महाराज की बात स्वीकार करने में तुम्हें संकोच है ?

सीता : बड़े से बड़ा जुगनू भी चन्द्रमा की समानता नहीं कर सकता ! [तीव्र स्वर में] मैं महाराज राम के अतिरिक्त किसी का नाम नहीं सुनना चाहती।

सुलेखा : महारानी, सावधान! ऐसा हठ मैंने जीवन में पहली बार देखा। देव-कन्या, यक्ष-कन्या, गंधर्व-कन्या, नर-कन्या, नाग-कन्या ऐसी कितनी ही सुंदरियों ने महाराज के बाहु-बल पर मोहित हो कर आत्म-समर्पण कर दिया, किन्तु आपने .....

सीता : [सोचते हुए धीरे धीरे] इनमें कोई विदेह-कन्या नहीं रही ?

[नैपथ्य में महाराज रावण की जय का घोष]

सुलेखा : महारानी सीता, महाराज की आज्ञानुसार आप अपना शृंगार करें। महाराज आने ही वाले हैं।

सीता : क्या महारानी मन्दोदरी के शृंगार से तुम्हारे महाराज रावण को संतोष नहीं हुआ ? अपनी महारानी के शृंगार को छोड़ कर जो दृष्टि पर-नारी के शृंगार की ओर जाती है, वह दृष्टि तुम्हारे महाराज ने आग में होम नहीं की ? [करुण स्वर में] बेचारी मन्दोदरी ! ... '

[नैपथ्य में फिर महाराजाधिराज रावण की जय। रावण के साथ महादेवी मन्दोदरी और दासी त्रिजटा आती हैं। रावण का प्रवेश करते ही अट्टहास]

सौदामिनी : राजाधिराज और महादेवी की सेवा में प्रणाम स्वीकृत हो।

चित्रा : राजाधिराज और महादेवी की सेवा में प्रणाम स्वीकृत हो।

सुलेखा : राजाधिराज और महादेवी की सेवा में प्रणाम स्वीकृत हो।

रावण : राजाधिराज की सेवा में तुम्हारा अनुराग रहे। संवत्सरों तक तुम राजाधिराज और महादेवी की सेवा करती रहो। तुम्हारी महारानी सीता का शृंगार हुआ ? [देखकर] नहीं हुआ ! सौदामिनी, यह शृंगार क्यों नहीं हुआ ? चित्रा, तुमने महारानी को सुसज्जित क्यों नहीं किया ? सुलेखा, तुमने पुष्पों की मालाओं और मोतियों से महारानी के केश क्यों नहीं सजाए ?

सौदामिनी : [नम्रता से] महारानी की इच्छा नहीं थी।

रावण : [दुहराते हुए] महारानी की इच्छा नहीं थी। [सोच कर] हाँ, महारानी की इच्छा सर्वोपरि है। त्रैलोक्य-सुंदरी महारानी सीता की इच्छा का आदर होना चाहिए। अच्छा, जाओ। तुम लोग महारानी सीता को प्रणाम कर यहाँ से जाओ।

तीनों : [सम्मिलित स्वर में] महारानी सीता को प्रणाम।

[सीता कुछ उत्तर नहीं देतीं, दासियों का प्रस्थान]

रावण : प्रणाम का कुछ उत्तर नहीं दिया महारानी सीता ने ! [अट्टहास] ठीक है। कहां त्रैलोक्य की शोभा का शृंगार और कहाँ तुच्छ दासियाँ ! प्रणाम का उत्तर भी कैसे हो सकता है ? हाँ, अगर महादेवी मन्दोदरी प्रणाम करें तो संभवतः उत्तर मिले। [मन्दोदरी की ओर देख कर] महादेवी मन्दोदरी !

मन्दोदरी : महारानी सीता को मन्दोदरी का प्रणाम।

सीता : प्रभु राम अनाथों पर कृपा करें।

[रावण मुक्त अट्टहास करता है।]

रावण : यह निष्ठा देखी ? महादेवी मन्दोदरी ! एक तपस्वी के प्रति यह निष्ठा ! संसार में किसी नारी के पास ऐसी निष्ठा नहीं। मैं इसी निष्ठा से प्रभावित हूँ महारानी सीता ! किन्तु यह निष्ठा शृंगार के साथ नहीं है। आज तो शृंगार होना चाहिए था। आज के पुण्य पर्व में देवाधिदेव शंकर स्वयं आए थे। महादेवी मन्दोदरी, तुमने भगवान शंकर की छवि देखी थी ?

मन्दोदरी : मैं तो आपकी और भगवान शंकर की छवि में कुछ देर तक अंतर भी नहीं देख सकी। यदि उनके हाथ में त्रिशूल और आपके हाथ में चन्द्रहास न होता तो दोनों का स्वरूप एक ही था।

[रावण अट्टहास करता है।]

रावण : ठीक है, भक्त और भगवान में एकरूपता तो होनी ही चाहिए। किन्तु आज उनकी मुद्रा कुछ उदास थी। संभवतः इसलिए कि महारानी सीता ने शृंगार नहीं किया। [सीता जी से] महारानी, आपकी मलीनता का क्षोभ देवाधिदेव शंकर को भी होता है। आपको आज शृंगार करना चाहिए।

[सीता सिसकियां भरती हैं।]

रावण : ये आंसू...! ये आंसू ! येतो आपके सौंदर्य के अनुरूप नहीं हैं, महारानी सीता ! और आपके सिर पर केशों की एक ही वेणी, यह

मैली साड़ी, ये भूमि पर गड़े हुए नेत्र, यह उदासी ! जैसे चन्द्र के साथ अन्धकार हो। क्यों महादेवी ? चन्द्र के साथ अन्धकार कैसे निवास करता है ?

मन्दोदरी : चन्द्र के साथ नहीं, चन्द्र के भीतर अंधकार निवास करत है, महाराज !

रावण : वह अंधकार नहीं है, महादेवी ! वह तो मेरा आतंक है जो चन्द्रमा सदैव अपने हृदय पर लिए फिरता है। संसार के लोग उसे कलंक कहते हैं। किन्तु वह चन्द्र के हृदय में राजाधिराज रावण का भय है; आतंक है। पर इस समय जाने दो इन बातों को। मुझे तो इन नेत्रों से त्रैलोक्य के सौंदर्य को देखना है, महारानी सीता !..... [सीता मौन रहती हैं] आज सौंदर्य में वाणी नहीं है, पुष्प में सुगंधि नहीं है, चन्द्रमा में किरण नहीं है। मैंने सारे भूमंडल का पर्यटन किया, स्वर्ग के देवताओं को जीता, पातालपुरी के नागों को अधीन किया, किन्तु ऐसा दिव्य सौंदर्य कहीं नहीं देखा ! अभी तक मैं समझता था कि मेरी महादेवी ही सौंदर्य की स्वामिनी हैं, किन्तु आज...

मन्दोदरी : महाराज, आप मुझे व्यर्थ आदर दे रहे हैं।

रावण : तब महादेवी, तुम भी यह स्वीकार करती हो कि महारानी सीता तुमसे अधिक सुंदरी हैं ?

मन्दोदरी : मैं इसे स्वीकार करती हूँ, महाराज !

रावण : तब तो महादेवी, तुम्हें महारानी सीता की सेवा करनी चाहिए। [सीताजी से] सुनिए महारानी सीता ! यदि आप एक बार भी मुझ पर कृपालु हो जावें तो मैं महादेवी मंदोदरी से लेकर सभी रानियों को आपकी अनुचरी बना दूँगा। बोलिए, आप महादेवी मन्दोदरी की सेवा स्वीकार करेंगी ?

सीता : महादेवी मन्दोदरी, मैं आपसे केवल एक तृण चाहती हूँ।

रावण : तृण ! केवल तृण ? क्यों ? किसलिए ? महादेवी, इन्हें एक सोने

का तृण लाकर दो। महारानी उससे अपनी स्वीकृति लिखेंगी। साथ ही काले पत्थर की एक कसौटी भी। कसौटी पर वह स्वर्ण-रेखा जैसे अंधकार पर सूर्य की किरण के समान होगी। वही महारानी की कृपा की स्वीकृति होगी !

सीता : नहीं महादेवी, मैं केवल भूमि का तृण चाहती हूं।

रावण : यह किसलिए ?

मन्दोदरी : मैं जानती हूँ महाराज, किसलिए। क्या महारानी सीता की इच्छा पूरी की जाय ?

रावण : उनकी इच्छा सर्वोपरि है। तृण को वे मेरे सामने रख कर ही बातें करें। मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं।

मन्दोदरी : [तृण तोड़ कर देती है] यह लीजिए।

सीता : [तृण लेते हुए] धन्यवाद, महादेवी !

रावण : महारानी, मैं अपने प्रस्ताव की स्वीकृति चाहता हूँ। मैं कबसे महादेवी मन्दोदरी को आपकी सेवा में नियोजित कर दूँ ?

सीता : एक स्त्री का अपमान करने के बाद दूसरी स्त्री के अपमान करने का प्रस्ताव ! इस मूर्खता के संबंध में मैं क्या कहूँ ! क्या वेदों का पाठ करने वाले पंडित के ज्ञान की यह विडंबना नहीं है ?

रावण : महारानी सीता ! [तीव्र स्वर से] महाराज रावण का अपमान करने की शक्ति किसी में नहीं है।

सीता : किस रावण का अपमान ? उस रावण का जो प्रभु के दूर चले जाने पर सूने आश्रम से मुझे हरण कर लाया है ? उस रावण का जो सन्यासी का वेश रख कर आया और चोर बन कर गया ? उस रावण का जो भिक्षा माँग कर संसार के समस्त भिक्षुकों को लज्जित कर गया ? आज वही रावण अपने अपमान की बात कर रहा है ! उस रावण ने भिक्षुकों तक का अपमान किया है।

मन्दोदरी : महारानी सीता, शान्त हो !

रावण : महादेवी मन्दोदरी, तुम रावण को शान्त नहीं करतीं ? आज पिछले दस महीनों से वह तिल तिल कर जल रहा है। उसने देवाधिदेव शंकर के दस महोत्सव किए हैं, दस बार प्रार्थनाएँ की हैं कि महारानी सीता मुझ पर अनुकूल हों, किन्तु न शंकर ने ही स्वीकृति दी और न महारानी सीता ने ही। मैंने दस महीनों से कुबेर की भेंट स्वीकार नहीं की, ब्रह्मा के कंठ से वेद-पाठ नहीं सुना, सूर्य को सभा में नहीं आने दिया, चन्द्रमा की अमृत-वाणी नहीं सुनी, सारे वैभव छोड़ दिए! एक मात्र इसलिए कि महारानी सीता एक बार कृपापूर्वक मेरी ओर मुख करें; किन्तु आज तक मैं इस सुख से वंचित रहा। मैं कितना अशान्त हूँ, यह अग्नि की लपटों से पूछो, लंका की सीमा पर गर्जना करते हुए सागर से पूछो! इसे तुम नहीं जान सकतीं, महादेवी!

मन्दोदरी : जानती हूँ महाराज, किन्तु यदि आपकी इच्छा पर सारे वैभव आपको छोड़ दें, ब्रह्मा, कुबेर, सूर्य और चन्द्र आपके दर्शन का वरदान न पावें, तो इसमें उनका क्या दोष ? दोष तो आपकी इच्छा का है।

रावण : तुम भी सीता से सहानुभूति रखती हो महादेवी ? मेरे प्रताप की ओर से आँख बंद कर सीता को ही निर्भीक और निडर बनाती हो ?

सीता : महाराज राम के बल से कौन निर्भीक और निडर नहीं है ? उनके प्रताप के सामने तुम्हारा प्रताप क्या है ? क्या जुगनुओं का प्रकाश कभी सूर्य के प्रकाश की समानता कर सकता है और उस प्रकाश से क्या कभी कमलिनी खिल सकती है ? ऐसे व्यक्ति का प्रताप-

रावण : [अट्टहास करते हुए] मेरा प्रताप ! महारानी सीता ! जिसके पुत्र ने सुरेश्वर इन्द्र को जीत कर इन्द्रजीत का नाम और यश पाया है उसके प्रताप के संबंध में आपको शंका है ? महादेवी, समझाओ सीता को कि मैं क्या हूँ ! त्रैलोक्य में मेरी शक्ति से लड़ने का साहस किसमें हो सकता है ! जिसके हृदय में दंडी, मुंडी और जटाधारी ही निवास करते हैं उस निर्गुणी.....

सीता : [बीच ही में] चुप रह दुष्ट ! क्या तुझे लज्जा नहीं आती

कि मुझे एकान्त में पाकर हरण करता है और अपनी शक्ति का आडंबर मुझे दिखलाना चाहता है ? अन्यायी भी कहीं शक्तिशाली हो सकता है, पापी भी कहीं भक्त हो सकता है, कायर भी कहीं शूरवीर हो सकता है ? जिसने अपनी सारी लज्जा खो दी है वह अपने सम्मान की बात किस मुख से कह सकता है ? जिसके सामने सन्यासी, चोर, भिक्षुक और कायर में अंतर नहीं है, वह रावण... वह रावण प्रभु राम से.....

रावणः : [बीच ही में चिल्लाकर] सीता.....

सीता : [मन्दोदरी से] महादेवी ! आज मुझे जीवन के अंतिम क्षण दीख रहे है । आप यहाँ से चली जावें तो अच्छा है ।

मन्दोदरी : [रावण से] महाराज ! नारी पर बल-प्रयोग करना अन्याय है ।

रावण : महादेवी, मैं तुमसे नीति की शिक्षा नहीं ले रहा हूं । रावण भगवान शंकर को छोड़कर किसी को अपना गुरू नहीं मानता । यदि तुम्हारी इच्छा हो तो तुम यहाँ से जा सकती हो ।

मन्दोदरी : मैं महाराज को अन्याय करने से रोकूँगी ।

रावण : [तीव्रता से] मुझे न्याय या अन्याय करने से कौन रोक सकता है ?

सीता : भगवान राम के बाण ! जब वे तेरे सिरों को काट कर भगवान के निषंग में प्रवेश करेंगे तो महात्मा लक्ष्मण उनसे पूछेंगे कि अन्यायी के रक्त का स्वाद कैसा है, तब ये बाण.....

रावण : [बीच ही में क्रोध से] बाण नहीं, यह कृपाण ! देखो, यह चन्द्रहास [तलवार निकालता है] मेरे अपमान करने वाले के शरीर में यही चन्द्रहास एक क्षण में चमक कर मेरे सम्मान का आदर्श त्रैलोक्य में स्थापित करता है ! यह चन्द्रहास ! देखती हो ? इसने कितने अपराधियों के सिर काट कर सारे ब्रह्मांड में बिखरा दिए हैं । सिरों की तरह असंख्य तारों को बिखराकर दूज का चन्द्र चन्द्रहास का अभिनय करता है । देखो, इस तारों भरी रात को और इस चन्द्रहास को ।

मेरी भौंह के संकेत पर न चलनेवाले को चंद्रहास की धार पर चलना पड़ता है।

सीता : [गहरी सास लेकर] चन्द्रहास ! श्याम कमलों की माला के समान प्रभु की भुजा ! मेरे कंठ की यही शोभा है। या तो प्रभु की भुजा हो या यह चन्द्रहास हो । चन्द्रहास ! चन्द्र का शीतल हास ! प्रभु के विरह में उठी हुई ज्वाला को तू क्यों नहीं शान्त कर देता ? तेरी धार कितनी शीतल है, कितनी तीक्ष्ण है ! मेरे इस दुःख को दूर कर दे। तू अभी तक मृत्यु का दूत है, मेरे लिए जीवन का देवदूत बन जा !

रावण : [चिल्ला कर] तब तैयार हो ! चन्द्रहास ! तुझे भी ऐसा शरीर न मिला होगा । तैयार हो। वायु को काटता हुआ आकाश में चन्द्रमा की तरह उठ जा और उल्कापात की तरह इस शरीर पर गिर.....

मन्दोदरी : [बीच में उठ कर और विह्वल होकर] महाराज, महाराज, यह नहीं हो सकता ! पुरुष नारी का इस प्रकार वध करे ! यह नहीं हो सकता ! यह अन्याय है ! यह नहीं हो सकता ! पहले मेरा वध कीजिए... मेरा वध... मेरा वध...

सीता : [दुःख से] महादेवी, यह क्या ?...

मन्दोदरी : [शीघ्रता से] नहीं, नहीं, महारानी सीता ! [रावण से] महाराज, पहले मेरा वध कीजिए। यह अन्याय मैं अपने सामने नहीं होने दूँगी। मैं आपको पाप में नहीं पड़ने दूँगी।

रावण : [जोर से सांस लेता हुआ] अरे, यह क्या ? भगवान शंकर की भी स्वीकृति नहीं ! मेरा त्रिपुंड गीला हो गया ! उस त्रिपुंड पर भगवान शंकर के आंसू गिर पड़े ! प्रभु, प्रभु...मेरे शत्रु पर तुम्हारी इतनी करुणा क्यों ? तुम्हारी इतनी अनुकंपा क्यों ? तुम कैसे मेरे भगवान हो ! भक्त की इच्छा के प्रतिकूल ! तुम्हारी तो कभी ऐसी बान नहीं थी ?... प्रभु शंकर ! मुझे बल दो कि मैं शत्रु से लड़ सकूँ ! चन्द्रहास से न सही तो अपनी नीति से ही लड़ सकूँ ! जिस प्रकार तुम मेरे सभी कार्यों में सहायक हो उस प्रकार इस कार्य में क्यों नहीं होते ? लेकिन मैं लड़ूंगा।

[प्रकट] महादेवी मन्दोदरी, तुम्हारे कहने से मैं इस मास भी सीता को छोड़ता हूँ। एक मास क्षमा की अवधि और रहेगी। मैं ग्यारहवाँ महोत्सव मनाऊँगा। ग्यारहों रुद्र उसके साक्षी होंगे और यदि उस उत्सव पर सीता ने मेरा कहना नहीं माना तो फिर यही चन्द्रहास!... यही चन्द्रहास होगा और उसके सामने होगी सीता...सीता... यही सीता जो मेरे आराध्यदेव द्वारा भी बचाई जा रही है। कहाँ हो शंकर? आज तुम्हारा भक्त अपमानित हो गया। [शीघ्रता से बाहर जाता है। बाहर जाते जाते शब्द धीमें होते जाते हैं।] इस अपमान का बदला..... महाराजाधिराज रावण के अपमान...का...बदला.....

मन्दोदरी : मैं भी जा रही हूँ महारानी सीता! पतिदेव रुष्ट हो गए। यह त्रिजटा दासी तुम्हारे समीप रहेगी।

[मन्दोदरी जाती है और सीता फिर एक बार सिसकी भरती हैं।]

सीता : [चिंतित स्वरों में] एक मास और...ग्यारहवाँ उत्सव... ग्यारह रुद्रों की साक्षी... क्यों नहीं आज ही उस दुष्ट ने मुझे इस विरह दुःख से मुक्त कर दिया! एक मास और...कैसे सहूँ! प्रभु के विरह में एक एक दिन युग के समान बीत रहा है, उस पर अभी एक मास की लंबी अवधि और है। [सिसकी लेकर] प्रभु, अब मैं जीवित नहीं रहूँगी। मै जीवित नहीं रहना चाहती। तुम्हारी होकर तुमसे इतनी दूर हूँ. एक एक क्षण मुझे चन्द्रहास की धार से भी अधिक तीक्ष्ण ज्ञात होता है। हाय मेरा जीवन नष्ट क्यों नहीं हो जाता? मेरे ही कारण मेरे प्रभु को व्यंग सुनने पड़ते हैं। मेरे ही कारण संसार देख रहा है कि मैं प्रभु की हूँ और प्रभु अभी तक नहीं आए। मैं कितनी अभागिनी... [सिसकियाँ]

त्रिजटा : महारानी, आप दुःख न करें। आपकी सेवा के लिए मैं तैयार हूँ। मैं त्रिजटा हूँ। आपकी आज्ञाकारिणी सेविका—

सीता : [विह्वल होकर] त्रिजटा, तुम मेरी सेवा करोगी तो यही सेवा करो कि लकड़ियाँ लाकर मेरे लिए चिता बना दो और उसमें आग

लगा दो। अब प्रभु राम का यह विरह मुझे सहन नहीं होता। राम के विरह की ज्वाला से चिता की ज्वाला शीतल होगी। मै कहाँ तक दुष्ट रावण के दुर्बचन सुनूँ! मैं प्रभु राम के शत्रु को अपनी आँखों के सामने कैसे देखूं? मेरे प्रेम को सार्थक करो और मुझे चिता में जल जाने दो। मैं अपने हृदय की वेदना कैसे कहूँ?

त्रिजटा : महारानी, आप इतनी दुखी क्यों होती हैं? प्रभु राम आपका उद्धार अवश्य करेंगे।

सीता : [चौंक कर] क्या कहा? फिर से कहो, देवी फिर से कहो–प्रभु राम . . . प्रभु राम . . .

त्रिजटा : हाँ, हाँ, प्रभु राम आपका उद्धार अवश्य करेंगे। आपने ही तो कहा था कि प्रभु राम के बाण.....

सीता : [विह्वल होकर] हाँ, कहती जाओ, देवी, कहती जाओ...मैं प्रभु की बात सुनना चाहती हूँ।

त्रिजटा : यही तो आपने कहा था कि भगवान राम के बाण जब रावण के सिरों को काट कर भगवान के निषंग में प्रवेश करेंगे तो महात्मा लक्ष्मण उनसे पूछेंगे कि अन्यायी के रक्त का स्वाद कैसा है?

सीता : किन्तु यह कब होगा, देवी त्रिजटा?

त्रिजटा : भगवान राम की कृपा होने में विलंब नहीं लगती।

सीता : सच है देवी, किन्तु यदि एक मास से अधिक विलंब हुआ तो दुष्ट रावण मुझे मार डालेगा और मैं प्रभु के दर्शन भी न कर पाऊँगी, इससे अच्छा तो यही है कि तुम मुझे अभी ही चिता में जल जाने दो।

त्रिजटा : यह संभव नहीं है महारानी, फिर रात आधी से अधिक व्यतीत हो गई है। अब किसके घर आग मिलेगी? सभी लोग भोजन कर सो रहे होंगे।

सीता : [आह भर कर] आह, यह भी संभव नहीं। फिर सहूँ प्रति दिन की तीक्ष्ण बातें, रात दिन, दिन रात!

त्रिजटा : देवी सीता, आप धैर्य रक्खें ! मैंने एक स्वप्न देखा है कि आपका उद्धार होगा !

सीता : देवी, आपके वचनों से मुझे धैर्य मिलता है, क्योंकि आप भी प्रभु राम के चरणों में प्रेम रखती हैं।

त्रिजटा : मैं किस योग्य हूँ महारानी, कि प्रभु राम के चरणों में प्रेम कर सकूँ ! यदि मेरे सिर की–जटाओं में आजन्म राम नाम की–नाम के अक्षरों की–र अ और म की रेखाएँ बनी रहें, तो इससे बड़ा सौभाग्य मेरा क्या होगा ?

सीता : मेरी विपत्ति की सहायिका देवी, तुम धन्य हो !

त्रिजटा : धन्य तो मैं तब होऊँगी जब महारानी, आपका उद्धार हो जायगा और मुझे विश्वास है कि दुर्भाग्य के बादल प्रभु की कृपा की किरणों को नहीं रोक सकते।

सीता : तुम्हारा विश्वास अमर रहे !

त्रिजटा : अच्छा महारानी, अब आप विश्राम कीजिए। रात थोड़ी ही रह गई है। अब मैं जाऊँगी। आप सो जाइए।

सीता : मैं क्या सोऊँगी ! मेरी शैया पर तो दुर्भाग्य ने कांटे बिछा दिए हैं, किन्तु तुम जाओ, तुम सोओ।

त्रिजटा : प्रणाम करती हूँ, महारानी !

सीता : प्रभु राम अनाथों पर कृपा करें।

[त्रिजटा का प्रस्थान]

सीता : [गहरी साँस लेकर] यह सहायिका भी चली गई ! विधाता मेरे कितना प्रतिकूल है। मांगने से आग भी नहीं मिलती, जिससे मैं चिता में जल जाऊँ ! मेरे हृदय की आग ही बाहर निकल आए तो मैं अपने को धन्य समझूँ। मैं अपना शरीर जलाना चाहती हूं, किन्तु मन ही जल कर रह जाता है। [कुछ देर ठहर कर] रात आधी से अधिक बीत चुकी है ! सब लोग सो रहे हैं। साँसों के आने-जाने का शब्द

सुनाई पड़ रहा है। ...मै क्या करूं! भगवान राम न जाने कहाँ होंगे। किस वृक्ष के नीचे बैठ कर मेरे विरह में दुखी होते होंगे! कंचनमृग का चर्म लाने का आग्रह करने से पहले मैंने उन्हें माला गूँथ कर पहिनायी थी। वह इस समय भी उनके गले में पड़ी होगी, उसके फूल मेरी ही तरह मुरझा गए होंगे, किंतु वे फूल मुझसे अधिक भाग्यशाली हैं, क्योंकि मुरझाने पर भी वे प्रभु राम के हृदय से लगे हुए हैं और मैं यहाँ मुरझाई हुई दुष्ट रावण की अशोकवाटिका में हूं। [सिसकी भरती हैं] प्रभु राम मुझे क्षमा करो! मैंने कंचनमृग का चर्म ही क्यों माँगा? तुमने मृग की ओर देख कर अपना परिकर बाँधा, हाथ में धनुष सँभाल कर तीक्ष्ण बाण की नोक को गहरी दृष्टि से परखा। बाण की ओर देखते हुए तुमने लक्ष्मण को रक्षा का भार सौंपा और तीव्र गति से कंचन मृग के पीछे दौड़ पड़े ... ...संसार जिनके पीछे दौड़ता है, वे मेरे प्रभु कंचनमृग के पीछे दौड़े...मेरे कारण... ओह प्रभु तुम कैसे हो और मैं कैसी हूं! आज मेरा कष्ट कँचनमृग बन जाता और तुम उसके पीछे दौड़ते! यह कष्ट मैं कैसे सहूँ? लक्ष्मण, तुम्हारा कुछ दोष नहीं। तुम कुटी से चले गए। मुझे क्षमा करो। प्रभु को समझा दो कि सारा दोष सीता का है। इसीलिए आज मेरे समीप कोई नहीं है। [पेड़ के पत्तों के हिलने का शब्द] वायु बह कर निकल जाती है, एक क्षण रुक कर मेरा संदेसा प्रभु के पास नहीं ले जाती। आकाश में इतने अंगारे फैले हुए हैं, इनमें से कोई भी तो नीचे गिर जाता! यह चन्द्रमा भी ज्वालाओं से जल रहा है। वह एक लपट नीचे की ओर फेंक दो तो मैं उस आग में जल जाऊँ! क्या मैं इतनी अभागिनी हूँ कि चन्द्रमा की एक लपट भी पाने की अधिकारिणी नहीं? वृक्ष अशोक, तुम्हीं मुझ पर दया करो। अपने नाम को सार्थक करते हुए मुझे भी अशोक बना दो। मेरा शोक दूर कर दो। तुम्हारे नये नये पत्ते आग की तरह लाल हैं। इन्हीं से अग्नि-कण बरसा कर मेरे शरीर का अन्त कर दो। प्रभु राम! तुम्हारे विरह में जल कर भी आज मैं जीवित

हूँ ! मेरे जीवन को...धिक्कार...है...[सिसकियाँ]

[इसी समय श्री हनुमान जी अशोक वृक्ष से श्रीराम की मुद्रिका नीचे गिरा देते हैं। मुद्रिका के गिरने का शब्द होता है।]

सीता : [चौंक कर] यह कैसा शब्द ? क्या आकाश से कोई तारा गिरा, या अशोक वृक्ष ने मेरे जलने के लिए अंगार डाल दिया है.....? [देख कर] वैसी ही तो कुछ चमक है। देखूँ, [सीता जी उठ कर मुद्रिका उठाती हैं] यह क्या ? यह तो मुद्रिका है ! यह मुद्रिका किसकी है...? अरे, इस पर तो राम-नाम अंकित है ! ओह, यह मुद्रिका तो प्रभु राम की है...! किन्तु यह यहाँ कैसे ? यह यहाँ कैसे आई ? इसे कौन लाया ? यह तो श्रीराम के हाथों में मैंने पहनाई थी। उनसे कभी एक क्षण दूर नहीं हुई । फिर यह मुद्रिका यहाँ कैसे...? प्रभु राम, तुम कहाँ हो ? किसी शत्रु ने तो...नहीं, नहीं, यह नहीं हो सकता, यह नहीं हो सकता। भगवान् राम को कौन जीत सकता है ? वे तो अजेय हैं, फिर यह मुद्रिका...मुझे छलने के लिए किसी ने माया से तो इसे नहीं बना दी ? किन्तु माया से, त्रिभुवन की माया से यह बनाई भी कैसे जा सकती है ? नहीं, नहीं, यह मुद्रिका उन्हीं की है। मेरे प्रभु राम की है। मुद्रिके बोल, तू यहाँ कैसे आई ? श्रीराम और लक्ष्मण कुशलपूर्वक तो हैं ? तूने राम को कैसे छोड़ दिया ? ओह, मेरे राम को सब छोड़ देते हैं ! नगर से चलते समय नगर-लक्ष्मी ने उन्हें छोड़ दिया, बन के बीच में मैंने उन्हें छोड़ दिया और अब मेरी दिशा के मार्ग में तूने उन्हें छोड़ दिया ! अब आज से नारियों पर कौन विश्वास करेगा ? मेरे राम की मुद्रिका.....

[श्री सीता जी सिसकियाँ लेती हैं, इसी समय अशोक वृक्ष पर से श्री हनुमान के शब्द]

रघुकुल मणि रामचन्द्र, दशरथ सुत रामचन्द्र, सीतापति रामचन्द्र, वानर-प्रिय रामचन्द्र।

सीता : [आश्चर्य से चौंक कर] यह कौन ?

हनुमान : श्री रामचन्द्र के चरण स्पर्श से अहल्या पवित्र हो गई, श्री

रामचन्द्र के हाथों से शिव-धनुष तिनके के समान टूट गया, श्री रामचन्द्र की कृपा से चित्रकूट भी साकेत बन गया, श्री रामचन्द्र की शक्ति से खरदूषण का विनाश हुआ, श्री रामचन्द्र की भक्तवत्सलता से जटायु ने परम गति प्राप्त की, श्री रामचन्द्र के अनुग्रह से सुग्रीव ने अपना खोया हुआ राज्य प्राप्त किया और श्री रामचन्द्र की कृपा से मुझे उनके चरणों की भक्ति ! [कंठ गद्‌गद् हो जाता है ।]

सीता : जिसने मेरे कानों में इस अमृत-वाणी की वर्षा की है वह मेरे सामने प्रकट हो ।

[अशोक वृक्ष से कूदकर श्री हनुमान श्री सीताजी के सामने आते हैं और प्रणाम करते हैं, श्री सीताजी आश्चर्य चकित हो मुख फेर कर बैठ जाती हैं ।]

हनुमान : मातुश्री सीता ! मेरा सादर प्रणाम स्वीकार हो । मैं करुणा-निधान श्रीराम की शपथ लेकर कहता हूँ कि मैं श्रीराम का दूत हनुमान हूँ । आप मुझसे मुख फेर कर न बैठें । मैं पुत्र की भाँति आपके दर्शन करना चाहता हूँ, मैं ही यह मुद्रिका लाया हूँ । प्रभु राम ने मुझे आपकी सेवा में भेजा है, आप मुझे श्रीराम-दूत मान लें, इसीलिये उन्होंने मुझे यह मुद्रिका देने की कृपा की ।

सीता : नर और वानर का साथ कैसे संभव है ?

हनुमान : मातुश्री ! दुष्ट रावण ने जब आपका हरण किया तो आपने अपने कुछ वस्त्र और आभूषण नीचे फेंक दिए थे । वे वानरराज सुग्रीव को प्राप्त हुए । मैं वानरराज सुग्रीव का सहायक हूँ । जब लक्ष्मण सहित श्रीराम आपको खोजते हुए उस स्थान पर आए तो दोनों में मित्रता हुई । सुग्रीव की रक्षा के लिए श्रीराम ने उसके भाई, बालि, का वध किया, फिर सुग्रीव की सहायता से श्रीराम ने आपकी खोज में असंख्य वानर भेजे । मैं ही इतना सौभाग्यशाली हूँ कि आज आपके चरणों के दर्शन कर रहा हूँ । मैं राम-दूत हनुमान हूँ, मातुश्री ।

सीता : तुम्हारे वचनों पर मुझे विश्वास होता है । तुम मन, वचन और कर्म से प्रभु राम के दास हो । कहो, मेरे प्रभु, राम, कैसे हैं और वीर

लक्ष्मण कैसे हैं ? मेरे प्रभु तो इतने कोमल हृदय वाले हैं, करुणासिंधु हैं, उन्होंने कैसे इतनी निष्ठुरता की कि अभी तक नहीं आए ? क्या कभी वे मेरा स्मरण करते हैं ? उन्होंने मुझे बिलकुल ही भुला दिया ! हाय, उन्होंने मुझे बिलकुल ही भुला दिया !

हनुमान : नहीं मातुश्री, वे आपको कभी नहीं भूल सके, वे तो आपका सदैव स्मरण करते हैं। वे सब तरह से कुशल हैं, यदि उन्हें दुःख है तो केवल आपका ही दुःख है। वीर लक्ष्मण भी सकुशल हैं। आप किसी प्रकार की चिन्ता न करें। आपके प्रति प्रभु राम के हृदय में जो प्रेम है, उसकी थाह नहीं ली जा सकती !

सीता : क्या कभी मेरे नेत्र उनके सुंदर श्याम शरीर को देख कर शीतल होंगे ? ओह, मैं कितनी अभागिनी हूँ।

हनुमान : मातुश्री, प्रभु राम जिनका स्मरण करते रहते हैं, उनके लिए अभाग्य कैसा ? दुष्ट रावण का सिर काटने के लिए श्रीराम के तरकश में बाण कसकने लगे हैं। श्रीराम ने इस दिशा में प्रस्थान कर दिया है। शीघ्र ही यह दुःख का अंधकार दूर होगा। प्रभु राम की कृपा का सूर्य उदय हो चला है, आप कुछ दिन और धैर्य धारण करें, कपि-सेना के साथ श्रीराम यहाँ आवेंगे और रावण को मार कर आपका उद्धार करेंगे।

सीता : [आनंद विह्वल होकर] श्रीराम मेरा उद्धार करेंगे ! मेरा उद्धार करेंगे ! ओह, आज मैं कितनी सुखी हूँ। प्रभु-राम, आज मैं तुम्हारे आने के समाचार से कितनी सुखी हूँ !

[इसी समय प्रभात का मंगल वाद्य और समय की सूचना बजती है।]

सीता : [प्रसन्नता से] प्रभात की इस मंगल वेला में, प्रभात की इस मंगल ध्वनि में, मेरी मंगल कामना सफल हो...! मेरे प्रभु राम की जय हो !

[मंगल वाद्य बजते-बजते वायु में लीन हो जाता है।]

राजनीतिक दृष्टिकोण से—

औरंगज़ेब की आख़िरी रात

पात्र-परिचय :

आलमगीर औरंगज़ेब—मुग़ल सम्राट

ज़ीनत उन्निसा बेग़म—आलमगीर औरङ्गजेब की पुत्री

करीम— एक सिपाही

हकीम और क़ातिब

स्थान— अहमदनगर का क़िला

समय— १८ फ़रवरी, सन् १७०७

रात्रि के ४ बजे

[बीजापुर और गोलकुण्डा की शिया रियासतों पर विजय प्राप्त करने के बाद जब औरङ्गजेब ने मराठो का अन्त करने का निश्चय किया तो उसे अपनी असफलता स्पष्ट दीख पडने लगी ।

उसने जब छत्रपति शिवाजी के पुत्र शंभाजी को सपरिवार बंदी कर लिया और उसके सामने इस्लाम धर्म में दीक्षित होने का प्रस्ताव रक्खा, तो शंभाजी ने घृणा के साथ प्रस्ताव को ठुकराते हुए औरङ्गजेब के प्रति अत्यंत कटु शब्दों का व्यवहार किया ।

फलस्वरूप शंभाजी बडी निर्दयता के साथ कत्ल किया गया । उसके कत्ल होते ही मराठो में क्रांति की ज्वाला भडक उठी । सत्रह वर्षों तक भयंकर संघर्ष होता रहा । इधर मुगल सेना दिनोंदिन विलासी बन रही थी । फलस्वरूप प्रत्येक लड़ाई में उसे बहुत अधिक हानि उठानी पडती थी ।

सन् १७०६ मे औरङ्गजेब ने देखा कि उसकी सेना अब अत्यत विश्रृंखलित और आलसी हो गई है । राज्य की आर्थिक दशा भी चिन्ताजनक हो रही है । लड़ाई की हानि ' जजिया ' कर से भी पूरी नहीं हो रही है । जलालुद्दीन अकबर के समय से संचित आगरा और दिल्ली के किलों की समस्त सम्पत्ति दक्षिण की लड़ाइयों में समाप्त हो चुकी है; तीन तीन महीनों से सिपाहियों और सिपहसालारों का वेतन नहीं दिया गया है ।

राज्य की इस दुर्व्यवस्था के साथ वह अब वृद्ध हो गया है । पहले जैसी शक्ति अब उसके शरीर में नहीं रही । उसका विजयस्वप्न निराशा में तिरोहित हो चला है । उसकी चिन्ताएं उसे चैन नहीं लेने देतीं । अन्त में हताश होकर वह अहमदनगर लौट आया है ।

इस समय वह अहमदनगर के किले में बीमार पडा हुआ है । उसका शरीर टूट चुका है । उसे ज्वर और खांसी है । इस समय उसकी अवस्था ८९ वर्ष की है । एक साधारण से पलग पर लेटा हुआ है । सिरहाने सफेद रेशम का तकिया है, जिसके दोनों बाजुओं में जरी की हलकी पट्टियां है ।

वह एक सफेद रेशम की चादर कमर तक ओढ़े हुये है। दुबला पतला शरीर। कटी-छटी सफेद डाढी। नाक लंबी किंतु वृद्धावस्था के कारण कुछ झुकी हुई। वह सफेद लम्बा कुरता पहने हुये है, जो रेशमी तनी से दाहिने कन्धे पर कसा हुआ है। गले में मोतियों की एक बड़ी माला पड़ी हुई है जिसके मध्य में एक बड़ा नीलम जड़ा है। हाथ में तसबीह है।

औरंगजेब की मुख-मुद्रा अत्यन्त मलीन और पश्चात्ताप से परिपूर्ण है। उसके दाहिनी ओर एक सुसज्जित पीठिका पर उसकी पुत्री जीनत उन्निसा बेगम बैठी हुई है। उसकी आयु ४० वर्ष के लगभग है। देखने में सौम्य और आकर्षक। वह नीले रङ्ग की रेशमी शलवार और प्याजी रङ्ग की ओढ़नी से सुसज्जित है। गले में रत्नों की माला है और कमर में मोतियों की पेटी कसी हुई है। उसके मुख पर भी भय और आशंका की रेखाएँ अंङ्कित हैं।

कमरे में कोई विशेष सजावट नहीं है, किंतु सारे वायुमंडल में एक पवित्रता है। पलंग के सिरहाने दो शमादान जल रही हैं। दूसरी ओर केवल एक है, जिससे आलमगीर की आँखों में चकाचौंध न हो। पलंग के दाहिने ओर जीनत उन्निसा की पीठिका के समीप ही एक बड़ी खिड़की है, जिससे हवा का मन्द झोंका आ रहा है। उससे घने अन्धकार के बीच में आकाश के तारे दिखाई पड़ रहे हैं।

आलमगीर के सामने कोने की ओर सोने के पिंजड़े में एक पक्षी बैठा हुआ है जो कभी-कभी अपने पंख फटफटा देता है। पलङ्ग से कुछ हट कर सिरहाने की ओर एक तिपाई है जिस पर दवा की शीशियां रक्खी हुई हैं। उसके समीप एक ऊंचे स्टैण्ड पर लम्बे मुह वाली सोने की सुराही है, उसमें गुलाबजल रक्खा हुआ है। उसके पास ही एक सोने का प्याला एक रेशमी कपड़े से ढका हुआ है।

परदा उठने पर आलमगीर कुछ क्षणों तक बेचैनी से खांसता है, फिर एक गहरी और भारी सांस लेकर शून्य की ओर देखता हुआ जीनत से कहता है :]

खाँसी...एक लहमे के लिए नहीं रुकती...कोई दवा उसे नहीं रोक सकती जीनत! कोई दवा उसे नहीं रोक सकती...यह मौत की आवाज़ है। इसे कौन रोक सकता है? [फिर खाँसता है]...मौत की आवाज़!

ज़ीनत : [धैर्य के स्वरों में] नहीं जहाँपनाह! आपकी खाँसी बहुत जल्द अच्छी हो जायगी। हकीमों ने...

आलम : [बीच ही में] हकीमों ने...हकीमों ने कुछ नहीं समझा। कुछ नहीं समझा, उन्होंने। यह खाँसी कोई मर्ज़ नहीं है बेटी ! यह खाँसी सल्तनत के उखड़ने की आवाज़ है, जो हमारे दम के साथ उखड़ना चाहती है । [मुह बिगाड कर] उखड़े । कहाँ तक रोकेंगे हम ? [खाँसता है] कितने बलवाइयों को नेस्तनाबूद किया, कितने ग़दर रोके लेकिन...लेकिन यह खाँसी नहीं रुकती बेटी ! रुके भी कैसे ? [शिथिल स्वरों में] अब आलमगीर आलमगीर नहीं हैं !

ज़ीनत : नहीं जहाँपनाह, आज भी हिन्दुस्तान और दकन आपके इशारे पर बनता और बिगड़ता है। आपके तेवर देखकर अफ़ग़ानिस्तान भी घुटने टेकता है। राजपूत, जाट, मराठे और सिख आज भी आपसे लोहा नहीं ले सकते।

आलम : लेकिन शिवाजी ले सकता था। हमारी थोड़ी सी लापरवाही से वह हाथ से निकल गया ! उसकी वजह से ज़िन्दगी भर परेशान रहा। लेकिन था बहादुर और दिलेर...खैर, 'काफ़िर ब जहन्नम रफ़्त' [खासता है] उसका बेटा शंभाजी...[रुक जाता है और गहरी सांस लेता है]

ज़ीनत : छोड़िए इन बातों को जहाँपनाह ! ये बातें इस वक्त दिल और दिमाग़ दोनों को खराब करने वाली हैं। आप जैसे ही अच्छे होंगे...

आलम : [बीच ही में] अब अच्छे नहीं हो सकते ज़ीनत ! चन्द घड़ियों की ज़िंदगी ! कौन जाने कब ख़ामोशी आ जाय। लेकिन बेटी हमने एक दिन भी आराम नहीं किया। [खाँसता है] एक दिन भी नहीं। राजपूत जैसी क़ौम पर हुकूमत करना ज़िन्दगी का आराम नहीं है। सब से बड़ी मेहनत है। मराठों की हिम्मत पस्त करना ज़िन्दगी का सब से बड़ा करिश्मा है—वह हमने किया बेटी, वह हमने किया। लेकिन अब...अब हम कमज़ोर हो गए हैं। अब कुछ नहीं कर सकेंगे । [ठंडी साँस लेकर कलमा पढ़ता है] ला इलाहा इल्लिल्लाह मुहम्मदुर रसूलिल्लाह...

ज़ीनत : आप सब कुछ कर सकेंगे जहाँपनाह ! अच्छा अब आप यह खाँसी की दवा खा लीजिये । [दवा देने के लिए उठती है] हकीम साहब दे गए हैं ।

आलम : [तीव्र स्वर में] क्या हकीम साहब खुद नहीं आए ?

ज़ीनत : आए थे । बड़ी देर तक आपका इंतज़ार करते रहे । आप होश में नहीं थे । वे थोड़ी देर के लिए बाहर चले गए हैं । उन्होंने अभी फिर आने को कहा है ।

आलम : जो दवा वह दे गए हैं, वह उन्हें चखाई गई थी ? [खांसता है]

ज़ीनत : जी, मैंने भी चखी थी । दवा में किसी तरह का शक नहीं है ।

आलम : यह अहमदनगर है बेटी ! शिया रियासत बीजापुर और गोलकुंडा के क़रीब । दुश्मनी दोस्ती में छुप कर आती है । ज़िन्दगी में यह हमेशा याद रखो ।

ज़ीनत : आपका कहना सही है, जहाँपनाह ! लेकिन दवा मैंने ख़ुद चख कर देख ली है ।

आलम : हमारे सामने नहीं चखी गई, ज़ीनत ! लेकिन ख़ैर कोई बात नहीं । दवा खाएंगे...लेकिन थोड़ी देर के लिए आराम, फिर वही तकलीफ़ । क्या करें दवा खाकर ! [जोर से खांसी आती है]...अच्छा लाओ, खाएं तुम्हारी दवा । आबे हयात से बढ़ कर ।

[आलमगीर हाथ बढ़ाता है । ज़ीनत प्याले में दवा डाल कर देती है । आलमगीर उसे हाथ में लेकर देखता है । सोचता हुआ एक बार रुकता है फिर थोड़ी-सी पीता है]

आलम : [गला साफ कर] पी ली तुम्हारी दवा बेटी ! इस दवा में जायके के साथ तुर्सी भी है । हुकूमत का प्याला भी ऐसा ही होता है ।

ज़ीनत : लेकिन आपने सब तुर्शी जायके में तबदील कर ली है ।

आलम : नहीं ज़ीनत, मराठों ने ऐसा नहीं होने दिया । हम कुराने पाक की क़सम खाके कहते हैं कि हम मराठों का नामो निशान मिटाने में

अपनी सारी सल्तनत की बाज़ी लगा देते, लेकिन...लेकिन अब वह हौसला नहीं रह गया। कमज़ोरी और बुढ़ापे ने हमें बेबस कर दिया है। [ठहर कर] हमारे बहुत से काम अधूरे पड़े हैं। काश, हमारी ज़िन्दगी के दिन अभी...ख़तम...न...होते...!

ज़ीनत : [उत्साह से] अभी आप बहुत दिनों तक सलामत रहेंगे, आलमपनाह !

आलम : [विह्वल होकर] अह्, फिर एक बार कहो ज़ीनत ! हम यह बात फिर से सुनना चाहते हैं। ओफ्...अगर हमारी ज़िन्दगी के दिन अभी ख़त्म न होते ! हम एक बार फिर शमशीर लेकर मैदाने-जंग में जाते, बाग़ियों से कहते—कम्बख़्तो ! आलमगीर कमजोर नहीं है। उसकी तलवार में अब भी चिनगारियाँ हैं। घुटने टेक कर गुनाहों की माफ़ी माँगो, नहीं काफ़िरो ! दोज़ख़ का रास्ता ख़ून की नहर से है। हमारी शमशीर से कटो और दोज़ख़ में दाख़िल... [आवेश में खाँसी रुकने पर भारी सांस लेता है] दोज़ख़...में दाख़िल...हो...!

ज़ीनत : आप आराम करें, जहाँपनाह ! नहीं तो आपकी तबियत और भी ख़राब हो जायगी।

आलम : इससे ज़ियादह और क्या ख़राब होगी, ज़ीनत ! जब हम मौत के दरवाज़े पर खड़े होकर दस्तक दे रहे हैं। चाहे जब खुल जाय। और आलमगीर के लिए जल्दी ही खुलेगा। देर नहीं हो सकती। मौत भी डरती होगी कि देर होजाने से कहीं आलमगीर सज़ा न दे। [खाँसी] ज़िन्दगी भर सज़ा ! सज़ा ! [रुकते हुए] अब्बाजान...को... भी...आँजहानी शाहेजहाँ को...[सोचता है]

ज़ीनत : आलमपनाह ! तज़किरे न उठाएं।

आलम : [भौंहों में बल देकर] क्यों न उठाएं ? ज़िन्दगी भर गुनाहों का बोझ उठाया है तो मरते वक्त उसका तज़किरा भी न उठाएं ? लेकिन ज़ीनत ! हमने सैकड़ों बार अपने दिल को दिलासा देने की कोशिश की। हमने गुनाह कहाँ किए ? कुराने पाक की रूह से, शरअ से...

इस्लाम का नाम दुनिया में बुलन्द करने के लिए—जिहाद के लिए, जो काम हमने किए क्या उनका नाम गुनाह है ? काफ़िरों को जहन्नुम रसीद किया...क्या यह गुनाह है ? उपनिषद् पढ़ने वाले दारा से सल्तनत छीनी...क्या यह गुनाह है ? नमूना-ए-दरबार-ए-इलाही में क्या मुझ से गुनाह हुए ? आलमगीर—ज़िन्दा पीर...! लेकिन कोई आवाज़ कानों में कहती है कि आलमगीर ! तू ने इस्लाम का नाम लेकर दुनिया को धोका दिया है। तूने इस्लाम की हिदायतों को नहीं समझा। ज़ीनत ! तू [तू पर जोर] बतला यह आवाज़ ठीक है ? क्या हमने इस्लाम के उसूलों को ग़लत समझा ?

ज़ीनत : [शान्ति से] आपसे कोई ग़लती नहीं हुई, जहाँपनाह !

आलम : [शून्य में देखता हुआ] हज़ारों सतनामियों को क़त्ल किया... दारा, शुजा, मुराद को तख्ते-ताऊस का हक़ नहीं दिया और बाप को सात बरस तक...लम्बे सात बरस तक...!

ज़ीनत : लेकिन आलमपनाह, अगर ग़ौर से देखा जाय तो शाहंशाहे शाहेजहाँ को नज़रबंद करना ग़लत नहीं कहा जा सकता। अपनी पीरी में वे अपनी आँखों से अपने बेटों का मज़ार देखते ! क्या उन्हें तकलीफ़ न होती ? आपने उन्हें उस तकलीफ़ से बचा लिया।

आलम : लेकिन उस तकलीफ के पैदा करने का ज़िम्मा किसका है ? हमारा। हमने ही लाहौर में दारा की क़ब्र बनवाई। हमने ही आगरे में मुहम्मद को भेज कर अब्बाजान का महल क़ैदख़ाने में तब्दील कराया...! उस दास्तान को तुम जानती हो ?

ज़ीनत : जहाँपनाह ! मुझसे वह दर्दनाक दास्तान क्यों दुहरवाना चाहते हैं ? आप आराम कीजिए। आपकी तबियत ठीक नहीं है।

आलम : तो हम ही वह दास्तान कहेंगे जो हमने मुहम्मद से सुनी है। [शून्य में देखते हुए] आधी रात थी...कमरे में सिर्फ़ एक शमा जल रही थी...दूसरी शमा शाहंशाहे शाहजहां की आँखों में झिलमिला रही

थी। वह चारपाई पर तसवीरे-संग की तरह लेटे हुए थे। उनकी पथराई आँखें दूर पर दिखाई देने वाले ताजमहल पर जमी हुई थीं... हल्की चाँदनी थी। शाहंशाह ने जहांनारा से कहा—जहांनारा, आलमगीर से पूछो, वह हमारी तरह ताजमहल को तो क़ैद नहीं करेगा...?

ज़ीनत : [आग्रह के स्वरों में] जहाँपनाह...

आलम : [उसी स्वप्न में] बादशाह की ज़बान तालू से सट गई थी... गला सूख रहा था। गहरी और सर्द साँस लेकर उन्होंने फ़रमाया—मुमताज़ हमारी बेग़म ! ताज हमें पत्थरों से नहीं, आँसुओं से बनवाना चाहिए था...काश, यह मुमकिन हो सकता !

ज़ीनत : [सहानुभूति के साथ] उन्हें बहुत तकलीफ़ थी, आलमपनाह ! लेकिन इस वक्त यह सब सोचना ठीक नहीं है। रात ज़ियादह बीत रही है।

आलम : [चौंक कर तसबीह फेरते हुए] क्या कहा ? रात ज़ियादह बीत रही है ? आज हमारे लिए भी शायद वही मौत की रात है। लेकिन हमारे सामने कोई ताजमहल नहीं है। [ठहर कर] हम इस लायक़ हैं भी नहीं, ज़ीनत ! ज़िन्दगी में हमने कुछ नहीं किया सिर्फ़ लड़ाइयां ही लड़ी हैं। उन्हीं में हमने फ़तह हासिल की है, लेकिन आज . . . आज ज़िन्दगी की लड़ाई में हमें शिकस्त ही मिली...भारी शिकस्त। हमने अब्बाजान को क़ैद नहीं किया, इस आख़िर वक़्त में अपने चैनो-सुखुन को ही क़ैद किया। आज इतने बरसों के बाद अब्बाजान की चीख़ हमारे कानों में आ रही है...प्यास से उनका गला सूख रहा है। उनकी आवाज़ में कितना दर्द है...तुम सुन रही हो...? नहीं ? उनकी हसरत भरी निगाहों की टक्कर से ताजमहल जैसे चूर-चूर होने जा रहा है।

ज़ीनत : [अत्यंत सांत्वना के स्वरों में] जहाँपनाह ! कहीं कुछ नहीं है। आप सोने की कोशिश कीजिए। जो कुछ हुआ उसे भूल...

आलम : [बीच ही में] नहीं भूल सकते ज़ीनत ! हमने अपनी सल्तनत की इमारत को रूह नीव में दफ़न कर खड़ी की है। आज रूह तड़प कर करवट लेना चाहती है। वह चीख़ रही है। तुम उसकी आवाज़ भी नहीं सुनना चाहतीं ?

ज़ीनत : जहाँपनाह ख़ुदा को याद कीजिए। सोने की कोशिश कीजिए। रात आधी से ज़ियादह बीत चुकी है।

आलम : ज़िन्दगी उससे ज़ियादह बीत चुकी है ! [नैपथ्य की ओर उंगली उठा कर] देखती हो यह अंधेरा ? कितना डरावना ! कितना ख़ौफ़नाक ! दुनिया को अपने स्याह परदे में लपेटे हुए है। गोया यह हमारी ज़िन्दगी हो ! इसमें कभी सुबह नहीं होगी ज़ीनत ? अगर होगी भी तो वह इसके काले समुन्दर में डूब जायगी। इस अन्धेरे में सूरज भी निकले तो वह स्याह हो जायगा ! ...[रुककर] ओह...कितना अन्धेरा है, ख़ुदा ! हमने तेरा नाम लेकर सल्तनत पर क़ब्ज़ा किया, तेरा नाम लेकर औरतों और बच्चों को क़ैद किया, वे सब तेरे बच्चे ! तेरे बन्दों पर एतबार नहीं किया। तेरा नाम लेकर...क़ुरान की क़सम खाकर मुराद...भाई मुराद से सुल्ह की और फिर...और फिर...उसका ख़ून...

[खाँसी आती है और फिर निश्चेष्ट हो जाता है]

ज़ीनत : [घबराहट के स्वरों में] जहाँपना...! जहाँपनाह ! [फिर पुकार कर] करीम, करीम !

[करीम सिपाही का प्रवेश। वह अदब से सलाम करता है]

ज़ीनत : [आदेश के स्वरों में] हकीम साहब को फ़ौरन यहाँ आनेकी इत्तला करो। बादशाह सलामत की तबियत ख़राब होती जा रही है। फ़ौरन जाओ। हकीम साहब अमीरों के दूसरे कमरे में होंगे। फ़ौरन...

करीम : जो हुक्म। [अदब के साथ सलाम कर प्रस्थान]

[ज़ीनत के मुख पर घबराहट के चिह्न और स्पष्ट हो जाते हैं। वह एक पंखे से

हवा करती है। आलमगीर होश में आता है। धीरे-धीरे अपनी आँखें खोल कर ज़ीनत को घूर कर देखता है]

आलम : [काँपते हुए स्वरों में] कौन... ? अब्बाजान ! [आँखें फाड़कर] तुम ?...तुम ज़ीनत हो ? अब्बाजान कहाँ गए ? अभी तो यहाँ आए थे। [सोचता हुआ] ज़र्द था उनका चेहरा...आँखों में आँसू थे। [ठण्डी साँस लेकर] इतने बड़े शहंशाह की आँखों में आँसू ? उन्होंने हमारे सामने घुटने टेक दिए और कहा—शहँशाहे आलमगीर ! हमें हमारा बेटा औरंगज़ेब वापस कर दो...! बादशाही लिबास में हमारा बेटा खो गया है...। उसे हमें वापस कर दो... ! [कुछ ठहर कर] लेकिन ज़ीनत ! वह बेटा कहाँ है ? उसने तो अपने अब्बाजान को क़ैद किया है। [इसी समय कमरे में टंगा हुआ पक्षी अपने पंख फड़फड़ा उठता है। आलमगीर उसकी तरफ चौंक कर देखता है]...और यह परिन्दा अपने पर फैला कर हमसे कुछ कह रहा है...? क्या कहेगा ? इसे भी तो हमने सोने के पिंजड़े में क़ैद किया है ! [ज़ीनत की ओर आग्रह से] ज़ीनत ! इस पिंजड़े का दरवाज़ा खोल दो। [ज़ीनत पिंजडे का दरवाजा खोलती है] उसे निकालो। [ज़ीनत परिन्दा पकड़ कर निकालती है] उड़ा दो उसे। [ज़ीनत उसे खिड़की से बाहर उड़ा देती है। आलमगीर उसके उड़ने की दिशा में कुछ देर देख कर संतोष की गहरी साँस लेता है।] आ...ज़ा...द ! [कुछ रुक कर] हम अब्बाजान को इस तरह आज़ाद नहीं कर सके ! हिन्दुस्तान के बादशाह को इस परिन्दे की क़िस्मत भी नसीब नहीं हुई !

ज़ीनत : लेकिन आलमपनाह ! बादशाह तो न जाने कब के दुनियाँ की क़ैद से निकल कर आज़ाद हो गए। अब किस बात का मलाल है ? आप अपनी तबियत सँभालिए। मैंने हकीम साहब को बुलवाया है। वे आते ही होंगे।

आलम : [ज़ीनत की बात जैसे उन्होंने सुनी ही नहीं] परिन्दे की क़िस्मत...बादशाह की क़िस्मत नहीं हो सकी... ! इस अँधेरे में उस परिन्दे की क़िस्मत जगी है। वह खुश होकर शोर कर रहा है। बचपन

में दारा भी इसी तरह शोर करता था। [रुक कर] कुछ वैसी ही आवाज़ आ रही है। [सुनते हुए] वह देखो। यह आ रही है। [रुक कर] लेकिन यह आवाज़ कैसी है ? इस खौफ़नाक अँधेरे में यह आवाज़ जैसे मुंह फाड़ कर खाने को दौड़ रही है। यह आई ! ज़ीनत यह आवाज़ सुनती हो ?

ज़ीनत : [आश्चर्य से] कैसी आवाज़ ? कौन सी आवाज़ ? जहाँपनाह !

आलम : [आँखें फाड़ कर] अरे, इतने ज़ोर से आवाज़ आ रही है और तुम्हें सुनाई नहीं पड़ती ? यह देखो। [सुनते हुए] फिर आई। यह हर लमहे तेज़ होती जा रही है। ज़ीनत ! [पुकार कर] ज़ीनत ! यह आवाज़ ! [चीख कर] यह खौफ़नाक...आवाज़ !

ज़ीनत : [धैर्य के स्वरों में] कोई आवाज़ नहीं है, जहाँपनाह ! आपकी तबियत में घबराहट है। इसी वजह से ऐसा ख़याल पैदा हो रहा है। [विश्वासपूर्वक] कहीं कोई अवाज़ नहीं है। आप अपने को सँभालने की कोशिश करें।

आलम : [घबराहट से कुछ उठ कर] नहीं, नहीं, यह आवाज़ बराबर आ रही है। कोई चीख रहा है। [संकेत कर] यह देखो। अँधेरे में यह कौन झाँक रहा है ? कौन ? [जोर से] कौन ? [पुकार कर] सिपहसालार ?

ज़ीनत : [समीप होकर] कोई नहीं है जहाँपनाह ! सिपहसालार की जरूरत नहीं है।

आलम : [घबराहट से भर्राए हुए स्वर में] यह खिड़की के पास कौन है ? [संकेत करते हुए] कराहता हुआ, चीखता हुआ ! ओह उसने फिर चीख भरी, अरे दारा...! [कांपता हुआ] दारा तुम हो ? हमने तुम्हारा खून नहीं किया ! हमने नहीं किया, दारा ! हुसेनखाँ जबरदस्ती तुम्हारे कमरे में घुस गया। हमने उसे हुक्म नहीं दिया था। और...और...[कांप कर] तुम्हारा सर कहाँ है दारा ? तुम्हारा सर किधर गया ? [आलमगीर उठ खडा होता है। फिर लडखड़ाते हुए] हम

खोज कर लाएंगे। हम अभी खोज कर लाएंगे। [हाथ फैलाते हुए] तुम्हारा इतना ख़ूबसूरत सर...!

[जीनत उसे रोक कर फिर पलंग पर लिटा देती है। आलमगीर अचेत हो जाता है।]

ज़ीनत : [अपने आंचल से अपने माथे का पसीना पोंछते हुए] जहाँ... पनाह...!

[करीम का प्रवेश।]

करीम : [अदब से सलाम करके] शाहज़ादी ! हकीम साहब तशरीफ़ लाए हैं।

ज़ीनत : [शीघ्रता से] फ़ौरन उन्हें अन्दर भेजो, इसी वक़्त।

करीम : [सलाम कर] जो हुक्म। [शीघ्रता से प्रस्थान]

ज़ीनत : [कम्पित स्वर में आँखों में आँसू भर कर] क्या जानती थी कि अहमदनगर में यह सब होगा ! या ख़ुदा ! [आलमगीर को चादर उढ़ाती है।]

[हकीम साहब का प्रवेश ! लंबी डाढ़ी, काला चोगा, सर पर अमामा, सफेद पैजामा और जरी के जूते। साथ में दवाओं का एक संदूकचा]

हकीम : [बादशाह को अदब से सलाम करने के बाद जीनत को सलाम करता है।] आलमपनाह !

ज़ीनत : [कंपित स्वर में] आलमपनाह को होश नहीं है, हकीम साहब ! [उठ कर हकीम साहब के पास आती है] आज रात को आलमपनाह की तबियत बहुत ही ख़राब रही। जानें उन्हें क्या हो गया है ! जागते हुए ख़्वाब देखते हैं और चीख़ उठते हैं ! एक लमहा उन्हें चैन नहीं है। [करुण स्वर में] अब आप ही मेरे नाख़ुदा हैं। तबियत घबराती है। जहाँपनाह को अच्छा कर दीजिए, जल्द अच्छा कर दीजिए।

हकीम : जहाँपनाह को होश नहीं है ! [गम्भीर और सान्त्वना के स्वरों में]

घबराइए नहीं, घबराइए नहीं शाहज़ादी! ख़ुदा पर भरोसा रखिए। वह चाहेगा तो इंशाअल्लाह बादशाह सलामत बहुत जल्द अच्छे हो जायेंगे। देखिए, मैं दवा देता हूँ। बादशाह सलामत अभी होश में आए जाते हैं। घबराने की कोई बात नहीं।

ज़ीनत : [विकृत स्वर में] मेरी समझ में कुछ नहीं आता कि मैं क्या करूं!

हकीम : इतमीनान के साथ आप बादशाह सलामत को पंखा झलें। मैं उन्हें होश में आने की दवा देता हूं।

[हकीम अपने संदूकचे में से एक टिकिया निकालता है। ज़ीनत पंखा झलती है]

हकीम : [डिबिया का ढक्कन खोलते हुए] अब बादशाह सलामत की खाँसी कैसी है?

ज़ीनत : खाँसी में बहुत आराम है। पहले तो वे हर बात कहने में खाँसते थे। आपकी दवा से उनकी खाँसी बहुत कुछ रुक गई, लेकिन घबराहट बहुत ज़ियादह बढ़ गई है। [पंखा झलती है]

हकीम : घबराहट भी दूर हो जायगी। [आलमगीर की नाक के समीप बहुत आहिस्ते से डिबिया ले जाता है।] अभी जहाँपनाह को होश आता है। आप सब्र करें।

ज़ीनत : उनकी बेचैनी देखकर तो मैं बिलकुल ही घबरा गई थी। मैंने बड़ी मुश्किल से अपने को क़ाबू में रक्खा। अगर मैं भी घबरा जाती तो फिर इधर था ही कौन?

हकीम : जहाँपनाह की ख़िदमत करना मेरा पहला फ़र्ज़ है।

ज़ीनत : इसीलिए तो मैंने आपके पास फ़ौरन् ख़बर भेजी।

हकीम : मैं ख़बर पाते ही हाज़िर हुआ। [आलमगीर पर गहरी नजर डाल कर] देखिए, देखिए! बादशाह सलामत को होश आ रहा है। पंखा ज़रा धीमा करें।

[आलमगीर के ओठों में कुछ स्पन्दन होता है, जैसे वे कुछ कहना चाहते हैं। फिर हलकी अँगड़ाई लेकर आँखें खोलते हैं। जीनत और हकीम के मुख पर प्रसन्नता की झलक]

ज़ीनत : [उत्साह से] होश आ गया ! होश आ गया ! !

हकीम : बादशाह सलामत को आदाबअर्ज़ करता हूँ। [दरबारी ढङ्ग से सलाम करता है]

आलम : [धीमे स्वर में] पा...नी...!

[जीनत शीघ्रता से सुराही में से गुलाबजल निकालकर आगे बढ़ाती है]

ज़ीनत : जहाँपनाह, यह पानी...

[आलमगीर उठने की कोशिश करता है। हकीम उसे उठने में सहारा देता है। आलमगीर पानी पीने के लिए झुकता है। लेकिन दूसरे ही क्षण रुक जाता है]

आलम : [प्रश्नसूचक स्वर] यह कौनसा पानी है ?

ज़ीनत : [नम्रता से] वही गुलाबजल है जो आपके लिए ख़ास तौर से तैयार किया गया है।

आलम : [सन्तोष से] लाओ [एक घूंट पीकर...घबरा कर] हमारी तसबीह कहाँ है ?

ज़ीनत : [पलङ्ग से तसबीह उठाकर] यह है जहाँपनाह !

आलम : [लेते हुए] हमेशा मेरी ज़िन्दगी के साथ रहने वाली...! [फिर एक घूंट पानी पीकर हकीम साहब को घूरते हुए] तुम कौन...हो ? [एक क्षण बाद जैसे स्मरण करते हुए] शायद...हकीम...साहब...?

हकीम : [सलाम करते हुए] जी, जहाँपनाह !

आलम : [कातर स्वर में] हमारी हालत बहुत ख़राब है हकीम साहब ! अब शायद हम न बचेंगे। [ठण्डी साँस लेता है]

हकीम : ऐसी बात न फरमाएँ जहाँपनाह ! बुख़ार आपका अब दूर हो ही गया, सिर्फ़ कमज़ोरी और खाँसी है। खाँसी भी अब अच्छी हो चली है, और कमज़ोरी भी इंशाअल्लाह दूर हो जायगी।

आलम : तो ज़िन्दगी भी दूर हो जायगी हकीम साहब ! इस वक्त हमारे लिए कमज़ोरी और ज़िन्दगी दो अलग-अलग चीज़ें नहीं हैं । एक दूर होगी तो दूसरी भी दूर हो जायगी । और आलमगीर कमज़ोर होकर ज़िन्दा नहीं रहेंगे ।

हकीम : [अदब से] आलमपनाह ! आप बजा फ़रमाते हैं । [हकीम यह बात आदत से कह देता है लेकिन अपनी गलती महसूस करने पर घबराहट से] लेकिन इसे सही नहीं मानना चाहिए, आलमपनाह ! [यह सोच कर कि उसे यह भी नहीं कहना चाहिए वह और घबरा कर कहता है]...मैं क्या अर्ज़ करूँ...कुछ जवाब नहीं दे सकता । [हाथ मलते हुए सर झुका लेता है]

आलम : [गम्भीरता से] ज़ीनत, हकीम साहब से कहो कि वे हमें बेहोशी की दवा दें ।

ज़ीनत : [बात बदलने के विचार से] इन्हीं की दवा से तो आप होश में आए हैं, जहाँपनाह ।

आलम : [गम्भीर किन्तु रुकते हुए स्वरों में] लेकिन ज़ीनत, इस होश से हमारी बेहोशी अच्छी है । गुनाहों की याद अब बरदाश्त... [रुक कर, चौंक कर, अपनी बात पलटते हुए] हकीम साहब, कमज़ोरी की हालत अब बर्दाश्त नहीं होती । ऐसी दवा दीजिए कि बेहोशी का आलम रहे । [रुक कर] आपके पास—शराब को छोड़कर—कोई ऐसी दवा है ?

हकीम : जहाँपनाह ! आपकी कमज़ोरी बहुत जल्द रफ़ा हो जायगी ।

आलम : [तीव्रता से] हमारे सवाल का जवाब दीजिए हकीम साहब ! आपके पास शराब को छोड़ कर कोई ऐसी दवा है ?

हकीम : [घबरा कर हकलाते हुए] जी, ऐसी दवाएँ तो बहुत हैं आलमपनाह ! लेकिन आपको—अपने जहाँपनाह को कैसे दे सकता हूं ? ये दवाएं आपके लिए नहीं हैं, आलमपनाह !

आलम : [आँखें फाड़ कर] आलमपनाह के लिए नहीं हैं ? कौनसी दौलत

है जो आलमगीर के लिए नहीं है ? इस वक्त बेहोश हो जाने की दवा हमारे लिए सब से बड़ी दौलत है । हकीम साहब, हम इस वक्त वही चाहते हैं ।

ज़ीनत : [भृकुटि-संचालन के साथ] हकीम साहब, आपके पास एक ऐसी दवा भी तो है जिसमें थोड़ी देर की बेहोशी के बाद सारी कमज़ोरी दूर होकर तबियत में ताज़गी आती है । [घूर कर देखती है]

हकीम : [संभल कर] हाँ, हाँ, एक ऐसी दवा मेरे पास है । मेरे वालिद साहब ने मुझे वह नुसखा देकर कहा था कि जब सब दवाएं बेकार साबित हों तब उसका इस्तेमाल किया जाय । [हिचकते हुए] मैं अभी उसका इस्तेमाल नहीं करना चाहता था ।

ज़ीनत : [आलमगीर से] और जहाँपनाह, इस वक्त वह दवा न खाई जाय तो बेहतर होगा । सुबह होने में ज़ियादह देर नहीं है । और अज़ान का वक्त करीब आ रहा है ! आप खुदा की इबादत न कर सकेंगे । अभी वह दवा रहने दें ।

आलम : यह बात ठीक कह रही हो बेटी । अच्छा, अभी वह दवा रहने दीजिए, हकीम साहब । आप अज़ान होने के वक्त तक दूसरी दवा दे सकते हैं ।

हकीम : बसरोचश्म । [शाहज़ादी से] शाहज़ादी, आप मुझे एक प्याला इनायत फ़रमावें, मैं कमज़ोरी दूर करने की दवा अभी पेश करूँ ।

ज़ीनत :] प्याला उठा कर] यह लीजिए ।

हकीम : [अपने संदूकचे में से एक दवा निकालते हुए] खुदा चाहेगा तो आपको फ़ौरन आराम होगा । सितारों की नहूसत दफ़ा होगी । [प्याले में दवा डालते हुए] आलमपनाह, हमीदुद्दीनखाँ ने तो सितारों की नहूसत दूर करने के लिए ४,००० रु. का एक हाथी आलमपनाह पर तसद्दुक कर दिया होगा ?

आलम : [गम्भीर स्वर में] नहीं । जुमेरात को हमीदुद्दीनखाँ ने नुजूमियों के कहने के मुताबिक तसद्दुक करने के बारे में एक दरख्वास्त ज़रूर

पेश की थी, लेकिन हमने उस दरख़्वास्त में यह बढ़ा दिया कि यह तो अंजुमपरिस्तों का रिवाज है। इसके बजाय ४,००० रुपया क़ाज़ी को गुरबा में तक़सीम करने के लिए दे दिया जाय।

हकीम : [उत्साह से आँखें चमकाकर] आलमपनाह ने क्या बात कही है ! अब तो सितारों की नहूसत दूर होने में कोई अंदेशा भी नहीं रह गया और मुझे भी यह कामिल यक़ीन है कि यह अरक़ आपको ऐसी ताक़त देगा कि आप तन्दुरुस्त होकर अपनी रिआया के दर्दोग़म को दूर करते हुए सौ साल तक सलामत रहेंगे।

आलम : [सोचते हुए] सौ साल तक ! यानी ग्यारह बरस और। लेकिन हकीम साहब, हम ग्यारह दिन भी ज़िन्दा नहीं रहेंगे। बेटों को भी तो बादशाहत करने का मौक़ा मिले। हमारे बेटे [सोचता हुआ] मुअज़्ज़म...आज़म...कामबख़्श...

हकीम : [दवा का प्याला सामने करते हुए] यह सही है आलमपनाह, लेकिन मुझे भी अपनी ख़िदमत करने का मौक़ा दें। मैंने अपनी हिकमत की बेहतरीन दवा आलमपनाह के रूबरू पेश की है।

आलम : [जीनत से] अच्छा ज़ीनत, यह दवा रख लो। इसे हम नमाज़ के बाद पियेंगे। अब आप तशरीफ़ ले जा सकते हैं। [जीनत दवा का प्याला ले लेती है]

हकीम : [सिर झुका कर] जो जहाँपनाह का हुक्म। लेकिन एक गुज़ारिश है।

आलम : क्या ?

हकीम : [हाथ जोड़ कर] आलमपनाह कुछ न सोचें, कोई गुफ़्तगू न करें। इस वक़्त आराम करना ख़ुद एक मुफ़ीद दवा होगी। सुबह होते ही आलमपनाह की तबियत अच्छी मालूम होगी।

आलम : अच्छी बात है; हम कुछ न सोचेंगे। कुछ गुफ़्तगू न करेंगे। लेकिन हम अपने बेटों को ख़त तो लिखवा सकते हैं ?...[सोच कर] वही करेंगे। हकीम साहब, अब आप तशरीफ़ ले जाइए। हमें अपने

बेटों की याद आ रही है।

हकीम : जो हुक्म। [बादशाही अदब के अनुसार सलाम करके प्रस्थान]

आलम : [सोचते हुए] हकीम साहब कहते हैं कि हम कुछ न सोचें, कोई गुफ़्तगू न करें, सुबह होते ही तबियत अच्छी मालूम होगी।... लेकिन ज़ीनत, हम जानते हैं कि हमारी तबियत अच्छी नहीं होगी। हमने अपनी किश्ती समन्दर में छोड़ दी है। अब साहिल दूर होता जा रहा है।

ज़ीनत : तबियत में घबराहट होने की वजह से आलमपनाह ऐसा फ़रमा रहे हैं। अब आपकी तबियत अच्छी होने जा रही है। हकीम साहब की दवा बहुत मुफ़ीद साबित हुई है। देखिए आपकी खाँसी को कितना फ़ायदा पहुँचा है।

आलम : [जोर देकर] तुम नहीं समझीं ज़ीनत! जिस तरह सुबह होने से पहले रात और भी सुनसान और ख़ामोश हो जाती है, उसी तरह मौत से पहले हमारी सारी शिकायतों का शोर ख़ामोश हो गया है। अब हमारा आख़िरी वक़्त क़रीब है।

ज़ीनत : [आँखों में आँसू भर कर] ऐसा न कहें आलमपनाह!

आलम : [गहरी साँस लेकर] और ज़ीनत, हमारी बेटी! आज इस आख़िरी वक़्त में हमारे बिस्तर के नज़दीक हमारा एक भी बेटा नहीं है। ऐसे बाप को तुम क्या कहोगी जिसने बादशाहत में ख़लल पड़ने के वहम से अपने कलेजे के टुकड़ों को सज़ा देकर हमेशा क़ैदख़ाने में रक्खा? अपने नज़दीक आने भी नहीं दिया! [सोचते हुए] हमारे क़ैदी बच्चो, तुम बदक़िस्मत हो कि आलमगीर तुम्हारा बाप है। तुमने और कोई गुनाह नहीं किया। तुम लोगों का सिर्फ़ यही गुनाह है कि तुम औरंगज़ेब के बेटे हो। आज तुम्हारा बाप मौत के दरवाज़े पर पहुँच कर तुम्हारी याद कर रहा है!...मुअज़्ज़म...आज़म...कामबख़्श...!

ज़ीनत : [आग्रह से] जहाँपनाह, मैं उन लोगों तक आपके ये मुहब्बत भरे अल्फ़ाज़ ज़रूर पहुँचा दूँगी।

आलम : [संतोष से] हम अपनी क़ब्र से भी तुम्हें दुआ देंगे, बेटी ! बेटी, हम ख़ुद अपने बच्चों को ख़त लिखाना चाहते हैं । इस आख़िरी वक़्त में हमारी ख़्वाहिश पूरी होने दो । क़ातिब को बुलाओ । [ठंडी सांस लेता है]

ज़ीनत : आपका हुक्म पूरा होगा अब्बाजान ! [पुकार कर] करीम !

[करीम का प्रवेश । वह सलाम करता है]

ज़ीनत : शाही क़ातिब को इसी वक़्त हाज़िर किया जाय ।

करीम : जो हुक्म । [सलाम कर शीघ्रता से प्रस्थान]

आलम : [मन्द स्वर में] हम ख़ुश हुए बेटी, हमारी दुआएं तुम्हारे साथ रहें । आज तक हमने शायद किसी की ख़्वाहिश पूरी नहीं की, हमें कोई हक़ नहीं कि किसी से भी अपनी ख़्वाहिश पूरी करने के लिए कहें । लेकिन तुमने हमारी ख़्वाहिश पूरी की । बहुत दिनों तक जियो ।

ज़ीनत : जहाँपनाह, शाहज़ादी जहाँनारा ने अब्बाजान की क़ैद में सात साल तक ख़िदमत की तो क्या मैं आपकी ख़िदमत कुछ दिनों तक भी न करूँ ।

आलम : हमें भी क़ैद में समझो, बेटी ! हमारे गुनाहों ने हमें चारों तरफ़ से घेर रक्खा है । ज़मीर की ज़ंजीरों ने भी हमारे हाथ पैर बांध लिये हैं । हम अब इस दुनियाँ को आँख उठाकर भी नहीं देख सकते । जिस सल्तनत को ख़ून से सींच सींच कर हमने इतना बड़ा किया है उसे अगर अब आंसुओं से भी सींचना चाहें तो हमें एक पूरी जिन्दगी चाहिये । वह हमारे पास कहाँ है ? [गला सूख जाता है । ठहर कर] बेटी, पानी, पानी.....गला सूख रहा है ।

[जीनत प्याले में गुलाबजल लेकर पिलाती है]

ज़ीनत : आप थक गए हैं, जहाँपनाह । सारी रात आपको बहुत बेचैनी रही ।

आलम : उस बेचैनी के ख़त्म होने का वक़्त भी आरहा है । [खिड़की की

ओर संकेत करते हुए] देखो, ये तारे ढल रहे हैं। रात भर इन्होंने रोशनी की और अब वे अपनी आख़िरी घड़ियाँ गिन रहे हैं। हम भी गिन रहे हैं, लेकिन हमने उम्र भर अंधेरा ही फैलाया। उजाले की कोई किरन नहीं रही। हम मौत को ही उजाला दे सके तो अपने को ख़ुश किस्मत समझेंगे। [स्तब्धता। एक बारगी चौंक कर] सुबह होगई क्या ? [खिड़की की ओर देखता है]

ज़ीनत : [उसी ओर देखती हुई] हां, जहाँपनाह, आसमान पर सफ़ेदी छाने लगी है।

आलम : (गहरी सांस लेकर) ख़ुदा की इबादत का वक़्त आरहा है। [तसबीह फेरता है] ज़ीनत, हमने ज़िन्दगी भर इबादत का ढिंढोरा पीटा, लेकिन ख़ुदा के पास तक नहीं पहुँच सके। अगर पहुँच पाते तो चलते वक़्त इतने गुनाहों का बोझ हमारे सर पर न होता। चलने का वक्त क़रीब आ रहा है। मुझे ख़ुशी है कि आज जुमा है। हमने ज़िन्दगी भर इबादत कर यही चाहा कि जुमा हमारा आख़िरी दिन हो। [अस्थिर होकर] क़ातिब अभी नहीं आया ?

ज़ीनत : आ रहा होगा, जहाँपनाह ! करीमबख़्श फ़ौरन ही उसे लेकर हाज़िर होगा।

आलम : [ठण्डी सांस लेकर] ज़ीनत, जब हम पैदा हुए थे तब हमारे चारों तरफ हज़ारों लोग थे, लेकिन... लेकिन इस वक़्त हम अकेले जा रहे हैं। हम इस दुनियाँ में आए ही क्यों, हमसे किसी की भलाई नहीं हो सकी। हम वतन और रैयत दोनों के गुनाह अपने सर पर लिए जा रहे हैं।

ज़ीनत : आलमपनाह ! आपने तो वतन और रैयत की भलाई की है, और...

आलम : [बीच ही में रोक कर] इस आख़िरी वक़्त में ऐसी बात मत कहो, ज़ीनत। ये बातें बहुत बार सुनी हैं। लेकिन अब इन बातों से रूह काँपती है, दिल डूबता है। काश ये बातें सच होतीं ! [गहरी सांस लेता है]

ज़ीनत : नहीं, आलमपनाह। ख़ानदाने तैमूरी में आपसे बढ़ कर अद्ल करने-वाला कोई नहीं हुआ।

आलम : और उस अद्ल में हमने अपनी मुराद पूरी की!...मुराद [मुराद शब्द से मुरादबख़्श का स्मरण आने पर] और हमारे मुरादबख़्श ने सामूगढ़ की लड़ाई में हमारे कहने पर दारा से लोहा लिया। कितनी हैरतअंगेज़ जंग थी वह! [सोचते हुए] राजा रामसिंह ने तलवार का ऐसा हाथ चलाया कि हम मय हाथी के ज़मींदोज़ हो जाते, लेकिन मुरादबख़्श...मुरादबख़्श ने अपनी ढाल पर तलवार रोक, राजा रामसिंह पर ऐसा वार किया कि वह हाथी के पैरों पर आ गिरा। उसका केसरिया बाना ख़ून से लथपथ होकर ज़मीन पर फैल गया, और बस इस सबका बदला मुरादबख़्श को क्या मिला! ओह...पा...नी...

[ज़ीनत फिर पानी पिलाती है]

ज़ीनत : हुज़ूरेआली, आपसे दस्तबस्ता अर्ज़ है कि आप अब कुछ न फ़रमावें। ऐसी बातें करके आप अपनी हालत और ख़राब कर लेते हैं।

आलम : [उतावली से] इस वक्त हमें मत रोको ज़ीनत उन्निसां! हमें मत रोको। हम कहेंगे, ज़रूर कहेंगे। बुझने से पहले शमा की लौ भड़क उठती है। हमारी याददाश्त भी ताज़ी हो रही है। एक एक तसवीर आँखों के सामने आ रही है। हम हाथी पर बैठकर सैरगाह जा रहे हैं। आगे पीछे हिन्दुओं का बेशुमार मजमा है। वे चीख़ चीख़ कर कह रहे हैं कि आलमपनाह, जज़िया माफ़ कर दीजिए। लेकिन हम माफ़ कैसे कर सकते हैं? दकन की लड़ाइयों का ख़र्च कहाँ से आएगा? हम कहते हैं...तुम काफ़िर हो! जज़िया नहीं हटेगा। वे लोग हमारे रास्ते पर लेट जाते हैं। हमारा हाथी आगे नहीं बढ़ रहा है। हम ग़ुस्से में आकर फ़ीलवान को हुक्म देते हैं, इन कम्बख़्तों पर हाथी चला दो। हाथी आगे बढ़ता है और सैकड़ों चीख़ें हमारे कान में पड़ती हैं!...हम हँस कर कहते हैं काफ़िरो, तुम्हारी यही सज़ा है। जज़िया माफ़ नहीं हो सकता...नहीं हो सकता...!

ज़ीनत : [आँखों में आँसू भर कर] आलमपनाह !

आलम : [उसी स्वर में] आज वह हाथी हमारे सामने झूम रहा है। मालूम होता है वह हमारे कलेजे को चूर चूर करता हुआ जारहा है। ज़ीनत, हमारा कलेजा टुकड़े टुकड़े हुआ जारहा है...। इसकी दवा तुम्हारे हकीम साहब के पास नहीं है।

ज़ीनत : [कातर स्वर में] आलमपनाह, आप यह दवा पी लीजिये। इस दवा से आपको बहुत फ़ायदा होगा। [दवा का प्याला आगे बढ़ाती है]

आलम : [भारी सांस लेकर] जिसने सारी ज़िन्दगी खून का जाम पिया है उसे दवा का जाम क्या फ़ायदा करेगा ? इसे फेंक दो ज़ीनत, उस खिड़की की राह फेंक दो।

ज़ीनत : आलमपनाह ! यह दवा...[हिचकती है]

आलम : [तीव्र स्वर में] ज़ीनत ! हम अब भी हिन्दुस्तान के बादशाह हैं। हमारे हुक्म की शमशीर अब भी तेज़ है। फेंको वह दवा।

[जीनत खिड़की की राह से वह दवा फेंक देती है]

आलम : [संतोष से] हम खुश हुए [ठहर कर] सोचो, जो दवा हकीम ने नहीं चक्खी, वह दवा हमारे काम की नहीं है। अहमदनगर का हकीम आगरे और दिल्ली का हकीम नहीं है।

ज़ीनत : तो जहाँपनाह वह दवा मैं चख लेती।

आलम : ज़ीनत, ज़िन्दगीभर हमने अपने ही मकान में आग लगाई है मरते वक़्त अपनी बेटी को भी मौत का जाम चखने देते...क्या हम हकीम को दवा चखने का हुक्म नहीं दे सकते थे ? लेकिन अब दवा पर हमारा भरोसा नहीं है ज़ीनत, दुआ पर भरोसा है। हमारे लिए दुआ करो...हमारे लिए दुआ करो...

ज़ीनत : [हाथ बाँध कर ऊपर देखती हुई] जहाँपनाह सलामत रहें... जहाँपनाह सलामत रहें...आ...मी...न ...(आँखें बन्द कर लेती है।)

[करीम का प्रवेश]

करीम : [सलाम करके] शाहज़ादी, क़ातिब हाज़िर है ।

आलम : [चौंक कर खुशी के स्वर में] क्या क़ातिब आगया ? आगया ? इसी वक्त उसे हमारे रूबरू हाजिर करो । हमारे पास जियादह वक़्त नहीं है ।

करीम : [सलाम कर] जो हुक्म । [शीघ्रता से प्रस्थान]

आलम : [संतोष की सांस लेकर] क़ातिब आगया बेटी । काश यह हमारी सारी ज़िन्दगी की दास्तान बड़े हरफ़ों में दर्ज करता ! हमारे बेटों के लिये यह बहुत बड़ी नसीहत होती । आलमगीर के आख़िरी वक़्त में सच्ची ज़िन्दगी पैदा होती । [तसबीह फेर कर कलमा पढ़ता है ।] ला इलाहा इल लिल्लाह मुहम्मदुर रसूलिल्लाह...

ज़ीनत : [आँखों में आंसू भर] अब्बाजान ! [उसका गला रुंध जाता है]

आलम : रोओ मत बेटी । हम खुश हैं कि तुम हमारे पास हो । आख़िरी वक़्त में अपनी बेटी की आवाज़ से हमारी क़ब्र में फूल बिछ जायेंगे, उसके आंसुओं के कतरों से हमारे गुनाह धुल जायेंगे । हमारी बेटी ज़ीनत ! [उसका हाथ अपने हाथ में लेता है]

[कातिब का प्रवेश । ढीला ढाला इबा (चोगा) कमर में कमरबन्द, सिर पर साफा, सफेद पैजामा, कामदार जूता । वह आकर शाही सलाम करता है]

आलम : [शीघ्रता से] क़ातिब, तुम आगए । हम अपने बेटों को ख़त लिखाना चाहते हैं । जल्द लिखो । हमारे पास वक़्त बहुत थोड़ा है । लिखना शुरू करो । [आलमगीर आँखें बन्द कर लेता है]

क़ातिब : [सिर झुका कर] जी, इरशाद !

[कातिब बैठ कर लिखने की मुद्रा धारण करता है । कुछ देर तक स्तब्धता रहती है । फिर आलमगीर मन्द किन्तु व्यथित स्वरों में बोलता है । कातिब लिखता जारहा है]

आलम : [धीरे धीरे] सलामअलेकुम...आज़म, हमारे बेटे, हम जारहे हैं...! हम ज़िन्दगी में अपने साथ कुछ नहीं लाए, लेकिन अपने साथ

गुनाहों का कारवाँ लिए जारहे हैं। तुम उख़ूव्वत, अम्न व एतेमाद पर ख्याल रखना...। यह माले दुनियाँ हेय है। हमारी आँखों ने ख़ुदा का नूर नहीं देखा...जिस्म से गरमी निकल गई है अब कोयलों का ढेर बाक़ी है...! हाथ पैर सूखे दरख्त की शाखों की तरह सख्त हो रहे हैं और कलेजे पर मायूसी की चट्टान रक्खी हुई है... ख़ुदा से दूर हूं.. और दिल में कोई सुकून नहीं है.. हमारे लिये कौनसी सज़ा होगी.. यह सोचा भी नहीं जा सकता.. ख़ुदा की रहमत पर हमारा पूरा यक़ीन है, लेकिन हम अपने गुनाहों का बोझ कहाँ लेजायें? अब हमने समन्दर में अपनी किश्ती डालदी है...ख़ुदा...हाफ़िज़...!

ज़ीनत : [आंखों में आँसू भरे हुए] अब्बाजान !

आलम : [आँख बन्द किए हुए] कामबख़्श, हमारे बेटे...

ज़ीनत : [कातिब की ओर इशारा करके] लिखो। [कातिब लिखता है]

आलम : हम अकेले जा रहे हैं.. तुम बेसहारे हो, इसका हमें मलाल है..! लेकिन इससे क्या फ़ायदा..? जो सज़ाएं हमने दी हैं.. जो गुनाह हमने किए हैं.. जो बेइंसाफ़ियां हमने की हैं.. इन सबका अज़ाब हम अपने आग़ोश में लिए हैं.. हम तुम्हें ख़ुदा पर छोड़ते हैं। अपनी माँ उदयपुरी को तक़्लीफ़ मत देना..! मैं रुख़सत होता हूं.. अलविदा...! [थोड़ी देर तक स्तब्धता रहती है]

ज़ीनत : [करुण स्वर में] अब्बाजान, आप ऐसा ख़त क्यों लिखा रहे हैं?

आलम : [जीनत की बात पर कुछ ध्यान न देकर] ज़ीनत, मेरी बेटी, इस ज़िन्दग़ी के चिराग़ में अब तेल बाक़ी नहीं रहा...! इस ख़ाक के पुतले को क़फ़न और ताबूत की ज़ेबाइश की ज़रूरत नहीं...! इस बदनसीब को ज़मीन में यों ही दफ़न कर देना...इस पुरते ख़ाक को पहली ही मंज़िल पर सिपुर्द ख़ाक कर दिया जाय...हमें ख़ुशी होगी अगर हमारी क़ब्र पर क़ुदरती सब्ज़ मलमल की चादर बिछी होगी...[कुछ देर ठहर कर] आँजहानी हमारे गुनाहों को बख़्श दीजिए...! दारा...! शुजा...! मुराद...!

[इसी समय बाहर 'अल्लाहो अकबर' की ध्वनि में अजान होती है। आलमगीर ध्यान से सुनता है। उसके ओठों में कुछ स्पन्दन होता है, फिर एक झटके के साथ सिर उठा कर अजान आने की दिशा में नेपथ्य की ओर देखता है]

आलम : [तसबीह फेरते हुए नेपथ्य की ओर देख कर रुकते किन्तु स्पष्ट स्वरों में] अल्ला...हो...अक...

['अकबर' का अन्तिम अंश 'बर' ओठों ही में रह जाता है और तकिए पर आलमगीर का सिर झटके से गिर पड़ता है]

ज़ीनत : [शीघ्रता से आलमगीर के सिर के समीप जाकर रुंधे हुए कंठ से] आलमपनाह...अब्बा...जान...!

[कोई जवाब नहीं मिलता। बाहर अजान होती रहती है। जीनत अपने आँचल से आंसू पोंछती हुई आलमगीर का मुंह सिरहाने पड़े हुए रेशमी कपड़े से ढाँप देती है]

[परदा गिरता है]

राजनीतिक दृष्टिकोण से—

पुरस्कार

पात्र-परिचय :

श्याम नारायण—(आयु २८ वर्ष) नाटक का संचालक
नलिनी— (,, १८ वर्ष) राजबहादुर की पत्नी
राजबहादुर— (,, ४८ वर्ष) नलिनी के पति, पुलिस इंस्पेक्टर
प्रकाश— (,, २२ वर्ष) राजनीति के अपराध में फ़रार कैदी, नलिनी का प्रेमी

समय— नवंबर की रात के ८ बजे

[एक सजा हुआ कमरा। जमीन पर चेक डिजाइन का फर्श बिछा हुआ है। दीवाल पर कुछ चित्र हैं, अधिकतर प्रकृति-सौन्दर्य के। पीछे की ओर एक खुली हुई खिड़की है जिसके ऊपर एक क्लॉक है जिसमें ६ बजने में दस मिनट बाकी हैं। क्लॉक से नीचे दो फोटो हैं जो बराबरी की ऊचाई से लगे हुए हैं, एक पुरुष का है, दूसरा स्त्री का। ये दोनों पति-पत्नी मालूम देते हैं।]

कमरे के बीच एक छोटा टेबुल है, उसके दोनों ओर कुर्सियां हैं। कमरे के बाईं ओर एक पक्की अँगीठी है जिसमें लाल अँगारे दीख रहे हैं। दूसरी ओर एक अलमारी है जिसमें पुस्तकें अस्त-व्यस्त रक्खी हुई हैं।

नवम्बर की रात के ८ बजे का समय है। श्यामनारायण (आयु २८ वर्ष), बैठा हुआ एक पुस्तक पढ़ रहा है।

श्याम—(पुस्तक जोरसे पढ़ते हुए) प्रेम का रहस्य बहुत गम्भीर है। आकाश सभी दिशाओं में फैला हुआ है, उसी प्रकार प्रेम भी। आकाश का विस्तार इसलिए है कि वह दूर से दूर उदय होनेवाली तारिका को छू सके और तारिका इसलिए इतनी छोटी है कि वह आकाश के क्रोड़ में कहीं भी अपना आत्म-समर्पण कर दे। लेकिन यह कौन जानता है कि आकाश अधिक प्रेम कर सकता है या तारिका में प्रेम की अधिक मर्यादा है? फूल इतना कोमल इसलिए है कि वह अपने हृदय ही में सुगन्धि की शैया तैयार कर दे और सुगन्धि इतनी सूक्ष्म इसलिये है कि वह सृष्टि के प्रत्येक कण में अपने फूल की स्मृति जाग्रत कर दे। लेकिन यह कौन जानता है कि फूल अधिक प्रेम कर सकता है या सुगन्धि में प्रेम करने की अधिक शक्ति है?

उसी भाँति पुरुष और स्त्री है। पुरुष इसलिए कठोर है कि वह बाहरी शक्ति से स्त्री की कोमलता की रक्षा कर सके और स्त्री इसलिए कोमल है कि वह कठोर पुरुष को पत्थर न बन जाने दे, वरन् उसमें हृदय के स्पंदन की सम्भावना उत्पन्न कर सके। प्रेम के क्षेत्र में किसका महत्व अधिक है—कठोर पुरुष का, या कोमल स्त्री का? किन्तु यह तुलना [नलिनी—आयु १८ वर्ष—का प्रवेश। सुन्दर वेश-भूषा, आकर्षक मुख, गौरवर्ण, हरी रेशमी साड़ी, माथे पर कुंकुम की बिन्दी। वह आकर चुपचाप खड़ी हो जाती है और ध्यान से सुनती है।] क्या तब भी स्थिर रहेगी, जब पुरुष कोमल होगा और स्त्री कठोर होगी? जब चन्द्र की किरण चन्द्र-कान्त मणि पर पड़ती है तो वह पिघल जाती है। ऐसी स्थिति में पत्थर, पत्थर नहीं रह जाता, वह स्त्री हो जाता है और किरण विदेश से आये हुए प्रियतम की तरह सीधी रेखा में खड़ी हो जाती है। तब वह किरण, किरण नहीं रह जाती, वह पुरुष हो जाती है। [नलिनी मुस्कुराती है।] यह मनो-विज्ञान का एक गूढ़ प्रश्न होगा। जब स्त्री पुरुष बन जायगी और पुरुष स्त्री बन जायगा। स्त्री की कठोरता.....[सिर ऊपर उठाता है और नलिनी की ओर देखकर पुस्तक पढ़ना छोड़कर सहसा कुर्सी से उठ खड़ा होता है। उसके स्वर में उल्लास और कौतूहल है।]

श्याम : अच्छा, आप कब आ गईं? मुझे मालूम ही नहीं हुआ! आइए।

नलिनी : [आगे बढ़ते हुए] आप तो स्त्री की कठोरता के पीछे पड़े हुए थे। आप को क्या मालूम होता!

श्याम : बात तो बड़े मार्के की है। आप ही बतलाइए, कितने पुरुष हैं जो अपनी स्त्री की स्त्री हो जाते हैं और...और [खाँसकर] जब घर से बाहर निकलते हैं तो पुरुष बनकर लोगों पर अपना रोब दिखलाने का नाटक करते हैं, लेकिन घर में पैर रखते ही वे स्त्री बन जाते हैं? इस उलझन में प्रेम बेचारा क्या-क्या रूप धरे? स्त्री के लायक़ बने, या पुरुष के लायक़, आप ही बतलाइए!

नलिनी : [मुस्कुराकर] आप क्या हैं, स्त्री या पुरुष?

श्याम : [लज्जित होकर] आप मुझसे सीधा प्रश्न न करें तो अच्छा है!

लेकिन मैं समझता हूँ कि प्रत्येक आदमी पब्लिक में पुरुष होता है और प्राइवेट में स्त्री। यानी मेरे कहने का मतलब यह है कि बाहर का काम करने में उसे कठोर बनना पड़ता है और घर का काम करने में उसे नम्र या कोमल बनना पड़ता है। यानी बाहर पुरुष, अन्दर स्त्री !

नलिनी : और अगर स्त्री बाहर का काम करने वाली हो तो वह पुरुष बन जाय ?

श्याम : [संकुचित होकर] अब यह मैं आप के सामने कैसे कहूँ ? आप चाहें तो आपको इसके उदाहरण भी मिल सकते हैं। दुनिया बहुत बड़ी है और वह सब तरह की चीज़ों की नुमाइश रखती है ! अच्छा, फ़िलहाल छोड़िए इन बातों को। इन बातों में और देर हो रही है। लेकिन हाँ, आज आप फिर देर से आईं ! मैंने आप से कितनी बार प्रार्थना की कि आप ज़रा जल्दी आजाया कीजिए, लेकिन...

नलिनी : मैं क्या करूँ, मुझे काम बहुत करना पड़ता है ! फ़ुर्सत मिले तो जल्दी आ जाऊँ।

श्याम : तो कुछ दिनों के लिए आप अपना कार्य कुछ कम नहीं कर सकतीं ?

नलिनी : मेरे वश की बात हो तो कार्य कुछ कम भी कर दूँ, लेकिन मैं यूनीवर्सिटी के प्रोफ़ेसरों को क्या कहूँ ? इतना अधिक काम दे देते हैं कि खत्म होने पर ही नहीं आता।

श्याम : वे सिर्फ़ आप को ही अधिक काम देते हैं या सबको ?

नलिनी : मामूली तौर पर कहते तो सभी से हैं, लेकिन मेरी ओर देखकर कहते हैं। ऐसी हालत में और चाहे काम न करें, लेकिन मुझे तो करना ही होता है।

श्याम : हाँ, आप पर उनको विशेष विश्वास है।

नलिनी : विश्वास की बात क्या ! लेकिन हम लोगों को पढ़ाते बहुत अच्छी तरह से हैं। कभी कभी पढ़ाने के साथ मेरी वेश-भूषा की

आलोचना भी कर जाते हैं – कभी साड़ी का बॉर्डर, कभी माथे की बिन्दी।

श्याम : मुमकिन है, परीक्षा में आप के माथे की बिन्दी पर ही कोई सवाल पूछ लिया जाय!

नलिनी : [हँसकर] आज आप 'मूड' में मालूम देते हैं।

श्याम : 'मूड' में तो तब आ पाऊँ, जब मैं किसी यूनीवर्सिटी का प्रोफ़ेसर हो जाऊं! अच्छा...[क्लॉक की ओर देखकर] समय हो गया। ६ बजने में सिर्फ़ ५ मिनट ही बाक़ी हैं। अब मैं जाऊँ, नहीं तो देर होगी।

नलिनी : अच्छी बात है; जाइए! मेरी ओर से आप निश्चिन्त रहिए।

श्याम : आप से मुझे यही आशा है! अच्छा। [नलिनी की ओर देरतक देखकर जाता है। नलिनी एक बार चारों ओर ध्यान से देखती है। अपने कपड़ों की सिलवटें ठीक करती है। फिर सावधानी से अलमारी में पुस्तकें सजाती है। एकबार खिड़की से बाहरकी ओर झाँकती है, जैसे किसीके आने का रास्ता देखती हो। फिर अंगीठी के पास आकर आग तेज़ करती है और वहीं एक छोटी-सी कुर्सी पर बैठ जाती है। फिर वह अलमारी से एक पुस्तक निकालती है और पढ़ने के लिए वहीं अंगीठी के पास बैठ जाती है। गरम शाल सँभालकर ओढ़ लेती है। पुस्तक पढ़ते हुए कभी-कभी बीच में वह खिड़की की ओर देख लेती है और फिर पुस्तक की ओर दृष्टि कर लेती है। नेपथ्य में दूर से आती हुई गाने की ध्वनि उसे सुनाई पड़ती है। उसके मुख पर प्रसन्नता की रेखा खिंच जाती है। वह पुस्तक से ध्यान हटाकर भौंहें सिकोड़कर सुनने लगती है। वह ध्वनि धीरे-धीरे पास आती हुई जान पड़ती है। उस ध्वनि को पहिचानने के लिए वह कौतूहल-वश खिड़की के समीप खड़ी हुई बाहर देखने लगती है। सन्दिग्धता और निश्चयात्मकता के भाव भृकुटि-संचालन से उसके मुख पर आ-जा रहे हैं। अब गाने की ध्वनि उसके अधिक समीप आ गई है। वह हर्षातिरेक से दरवाज़े के समीप जाती है। दो क्षण रुकने के बाद वह फिर खिड़की के समीप आकर बाहर देखते हुए गीत सुनने लगती है।]

वही होगा जो होना है!
तू गा ले दिन चार, अन्त में सब दिन रोना है!

वही होगा जो होना है !
यह तेरी मीठी हँसी,
है सपने की बात।
अन्धकार से है घिरी,
यह तारों की रात।
मिटने को ही बना जगत का कोना-कोना है।
वही होगा जो होना है !
अपने जाने की दिशा,
तू जाता है भूल।
काँटों की इस राह में,
कहाँ मिलेंगे फूल।
चल तू अपनी राह, अन्त तक जीवन ढोना है।
वही होगा जो होना है।

[धीरे-धीरे यह आवाज दरवाजे तक आती है फिर क्षीण होते-होते रुक जाती है। नलिनी दरवाजे के समीप दबे पैरों जा कर खड़ी हो जाती है। खट्-खट् की आवाज होती है। नलिनी शीघ्रता से दरवाजा खोलती है। गेरुए वस्त्र पहने हुए एक व्यक्ति का प्रवेश। मुख पर डाढी और मूँछ। वह चौकन्ना होकर चारों ओर देखता हुआ आगे बढ़ता है। आकर दरवाजा बन्द करता है। वह नलिनी को देखकर कमरे के चारों ओर दृष्टि फेंकता है। नलिनी उसकी ओर तीव्र-दृष्टि से देखती है, फिर एकाएक बोल उठती है।]

प्र...का...श !

व्यक्ति : [ओंठ पर उँगली रखकर] जोर से नहीं ! धीरे बोलो उजेला कम कर दो !

नलिनी : [उत्सुकता से किन्तु कुछ धीमे स्वर में] तो तुम आगए ! प्रकाश !

व्यक्ति : [कुछ तीव्रता से] नादान मत बनो, नलिनी ! उजेला कम कर दो।

[नलिनी एक बत्ती बुझा देती है।]

व्यक्ति : तो तुम अकेली हो नलिनी ?

नलिनी : हाँ, अकेली ! तुम आए कब ?

व्यक्ति : [नलिनी के प्रश्न का उत्तर न देते हुए] देखो, खिड़की बंद करदो। नहीं, खिड़की रहने दो, सिर्फ़ परदा गिरादो ! [नलिनी खिड़की का पर्दा गिरा देती है।]

व्यक्ति : तुम्हारे पतिदेव कहाँ हैं ?

नलिनी : अभी–अभी सिनेमा देख ने गए हैं। मैंने कहा था कि आज का फ़िल्म बहुत अच्छा है। ज़रूर देखिए। ग्रेटा गार्बो का है 'मैटा-हारी'। जासूसी फ़िल्म होने की वजह से बात उन्हें भी पसन्द आई। वे चले गए। आजकल वे भी जासूसी कर रहे हैं !

व्यक्ति : हाँ, पुलिस के आदमियों को जासूसी का काम भी जानना चाहिए। वे जल्दी तो नहीं लौट आएँगे ?

नलिनी : आशा तो नहीं है !

व्यक्ति : ठीक है। [गेरुआ वस्त्र उतारते हुए] माफ़ करना, नलिनी। मैंने तुम्हारे प्रश्न का उत्तर अभीतक नहीं दिया। मेरी परिस्थिति ही ऐसी है।

नलिनी : [प्रेमावेश में] कोई बात नहीं, प्रकाश, तुम आए कब ? आओ, यहाँ अँगीठी के पास बैठ जाओ। ठण्ड बहुत लग रही होगी।..... ओह.....अब जाकर, तुम कहीं आए हो !

[प्रकाश इस समय तक अपना गेरुआ वस्त्र उतार चुका है । वह नीचे हाफ पैंट और एक ऊनी बनियान पहने हुए है। सुडौल और गठा हुआ शरीर है। आयु २२ वर्ष]

प्रकाश : हाँ, अपनी नलिनी के लिए जान हथेली पर रख कर !

नलिनी : [हँसकर] और इस डाढ़ी–मूँछ में तो तुम पहिचाने भी नहीं जाते। बिलकुल बाबाजी ही बन गए !

प्रकाश : [नकली दाढ़ी मूँछ निकालते हुए] कहीं इस वेश से तुम धोखा न खा जाओ ! कहीं मुझे भूल न जाओ !

नलिनी : वाह, कहीं नलिनी अपने प्रकाश को भूल सकती है ? हजारों आदमियों में मैं तुम्हें पहिचान लूँगी।

प्रकाश : यह तुम्हारी कृपा है, नलिनी !

नलिनी : मेरी कृपा नहीं, तुम्हारा साहस है ।

प्रकाश : साहस क्या है, अनजान रास्ते और अँधेरी भीगी हुई रातें...

नलिनी : [बीच ही में] तुम्हें ठंड लग रही होगी, प्रकाश ! यहाँ अँगीठी के पास बैठ जाओ।

प्रकाश : हाँ, ठण्ड तो बहुत लग रही है, लेकिन आज अँगीठी के पास बैठ जाऊँ तो कल चल भी नहीं सकूँगा। मेरी आदत ख़राब हो जायगी।

[अँगीठी के पास आकर एक कुर्सी पर बैठता है और आग के सामने अपने हाथ फैलाता है।]

नलिनी : इस ठण्ड में तुम्हें एक ही स्थान पर रहना चाहिए। तुम्हें कुछ ओढ़ने के लिए दूँ ? [अपना शाल उतारने के लिए प्रस्तुत होती है।]

प्रकाश : नहीं-नहीं, मैं ठीक हूँ। आग काफ़ी तेज़ है। शाल के बग़ैर तुम्हें ठण्ड लग जानेका डर है। मेरा क्या ? मैं तो इससे सौगुनी ठण्ड बर्दाश्त कर सकता हूँ।

नलिनी : [गहरी साँस लेकर] ओह, तुम्हारी क्या दशा हो गई है, प्रकाश ? लाखों रुपयों के मालिक होकर तुमने कैसा जीवन अपना लिया ?

प्रकाश : नलिनी के बिना लाखों रुपयों की कोई क़ीमत नहीं। जाने दो इन बातों को। अब तो सब सपना हो गया। जब मैं नलिनी को नहीं पा सका तो रुपयों की क्या आवश्यकता रह गई ! रुपया किसके लिए होता ? मेरे लिए ? [हँसकर] मैं तो कहीं भी अपना पेट भर सकता हूँ !

नलिनी : [गहरी साँस लेकर] ओह, मेरे कारण तुम्हें बहुत कष्ट हुआ प्रकाश ?

प्रकाश : मुझे क्या कष्ट हैं ? बेचारी पुलिस को कष्ट है ! उसे इस ठण्ड में जाने कहाँ-कहाँ घूमना पड़ता है ! वह बहुत परेशान है ! कहीं भी

मेरी सुगंधि या दुर्गन्धि पा जाय, तो जन्मभर के लिए मुझे जेल में डाल दे। फिर मैं अपनी नलिनी से कभी मिल भी न सकूं!

नलिनी : तुम बहुत होशियार हो, प्रकाश! पुलिस तुम्हें नहीं पा सकती!

प्रकाश : [अपने सिरपर हाथ फेरते हुए] यह तुम्हारी कृपा है, नलिनी! नहीं तो प्रकाश पुलिस-इन्स्पेक्टर के मकान में शामको ६ बजे प्रवेश करे और फिर भी न पकड़ा जाय! यह सब तुम्हारी कृपा है, नलिनी! सिर्फ़ तुम्हारी कृपा!

नलिनी : मेरी कृपा नहीं प्रकाश, यह तुम्हारा साहस है!

प्रकाश : साहसी व्यक्ति तो मर भी सकता है, लेकिन मैं जिन्दा हूँ। और मेरी साँस मेरे पास नहीं है वह तुम्हारे पास है, तुम्हारे दिल में है! और उसे पाने के लिए मुझे साहसी बनना पड़ता है। यों कहो कि मेरा प्रेम मेरे साहस से भी अधिक बलवान है। तभी तो इस अँधेरी रात में चारों ओर पुलिस से घिरा हो कर भी तुम्हारे पास आने से मैं अपने को नहीं रोक सका।

नलिनी : [अर्द्ध निद्रित हुए स्वर में] मैं जानती हूँ, प्रकाश!

प्रकाश : मेरे गाने से तो तुमने मुझे पहिचान लिया होगा?

नलिनी : हाँ, उसी समय। तुमने १२ ता. को पत्र लिखा था-वह मुझे आज से ५ दिन पहले ही मिल गया था। मैं तो मन-ही-मन तुम्हारे गीत को अनेक बार गा चुकी थी-"वही होगा, जो होना है।" बड़ा सुन्दर गीत है...[स्वर में गाती है] "वही होगा जो होना है!" इसे सुनकर मैं उसी समय समझ गई कि तुम आ रहे हो! बड़ा अच्छा गाते हो, प्रकाश!

प्रकाश : [हँसकर] तुम्हारे प्रेम का स्वर मुझे मिला है न? तभी इतनी अच्छी रागिनी निकलती है! [सहसा] दरवाजा बन्द है?

नलिनी : हाँ, अच्छी तहर से!

प्रकाश : अच्छा, ज़रा उजेला तेज़ कर दो। इस प्रकाश में मैं तुम्हारे

दर्शन कर सकूं !

नलिनी : (रोशनी तेज़ करती हुई) मैं तो रोज तुम्हें स्वप्न में देखती हूँ।... आग भी तेज करूँ ?

प्रकाश : नहीं ठीक है ! काफ़ी अच्छी आग है।

नलिनी : मैंने शाम से ही तुम्हारे लिए तेज कर रक्खी है। उनसे मैंने दोपहर से ही सिनेमा की बातें छेड़ दीं। मुझे भी लेजाने को कह रहे थे। मैंने कह दिया कि मेरी इच्छा नहीं हो रही है। वे चले गए, सन्देह भरी आँखों से देखते हुए !

प्रकाश : सन्देह भरी ?

नलिनी : हाँ, जबसे उनसे विवाह हुआ है, मैं कभी उनसे खुल कर बोली भी नहीं। वे मुझे चाहते तो बहुत हैं, लेकिन मैं अपने हृदय को क्या करूँ, प्रकाश ! इसीलिए वे मुझपर सन्देह करते हैं कि मैं किसी और से प्रेम करती हूँ। उन्हें चाहती भी नहीं। हमारे माता-पिता कभी लड़की के हृदय की बात जानने की कोशिश नहीं करते ! जहाँ चाहते हैं वहाँ लड़की का विवाह कर देते हैं, गोया लड़की एक कार्ड है, जहाँ चाहा, वहाँ भेज दिया !

प्रकाश : [मुस्कुराकर] विज़िटिङ्ग-कार्ड !

नलिनी : हाँ, और क्या ? विज़िटिङ्ग-कार्ड न सही, क्रिस्मस कार्ड सही। एक ही बात है। एक तो वे लड़की को बी. ए., एम. ए. तक पढ़ाते हैं और जब लड़की संसार के सम्पर्क में आकर अपनी रुचि बना लेती है तो उसे एक दिन शादी के नामसे वन्...टू...थ्री...कर देते हैं।

प्रकाश : यह शादी की अच्छी परिभाषा है !

नलिनी : बिलकुल 'पैराडाइज़ लॉस्ट।' तुम आए हो तो मैं इतनी ख़ुश हूँ प्रकाश, जैसे मुझे अपना स्वर्ग फिर मिल गया है ! एम. ए. क्लास के अपने दो वर्ष कितनी अच्छी तरह बीते ! उसी समय से मैंने प्रण कर लिया था कि अगर विवाह करूँगी तो सिर्फ़ तुम्हारे साथ ! लेकिन पिता

जी के सम्मान की आग में मुझे हँसते हुए ज़िन्दा रहने की सज़ा मिली। प्रकाश, तुमने तो अपना प्रण निभा लिया, संसार छोड़कर तपस्या में अपनी ज़िन्दगी सुखा डाली। मैं ऐसा नहीं कर सकी, प्रकाश! मैं क्षमा किए जाने के योग्य भी नहीं हूँ!

प्रकाश : नहीं नलिनी, ये तो संसार की परिस्थितियाँ हैं! इनमें मनुष्य को सब तरह के अनुभव होते हैं और मनुष्य को चाहिए कि वह बिना भौंह पर शिकन लाए सब बातों को सोचे-समझे! मेरा क्या है? यदि संसार में एक नवयुवक कम हो गया तो उसकी कोई हानि नहीं! मैं तुम्हें नहीं पा सका, तो कोई बात नहीं। तुम्हारे प्रेम के वे दिन ही मेरे लिए क्या कम हैं, जिन्हें सोच-सोचकर मैं ज़िन्दा रह सकता हूँ?

नलिनी : लेकिन तुमने तो अपना बलिदान ही कर दिया, प्रकाश?

प्रकाश : और मैं क्या करता, नलिनी! संसार में किसकी सभी इच्छाएँ पूरी हुआ करती हैं? मैंने भी अपना दिल मज़बूत बना लिया! सोचा, देखूँ मुझपर कितनी मुसीबतें आती हैं? जब संसार में मुसीबतें ही मुसीबतें हैं, तो मनुष्य कबतक उनसे बच सकता है? कभी-न-कभी तो उनके चक्र में पड़ना ही होगा, अभी से सही!

नलिनी : लेकिन मुसीबतों की भी तो कोई सीमा होती है? तुम्हारी मुसीबतों का तो अन्त ही नहीं दिखलाई देता!

प्रकाश : उसकी आवश्यकता भी नहीं है। और जब मैंने तुमसे निराश होकर देश-सेवा की तपस्या में अपने को डाल दिया है तो अब मैं अपनी मुसीबतों का अन्त भी नहीं चाहता। देश की सेवा कर किसने सुख की नींद सोई है? चाहता हूँ कि देश के नाम पर जेल में सड़ कर मर जाऊँ तो मुझे सन्तोष भी होगा कि मेरा जीवन किसी कार्य में लग सका!

नलिनी : लेकिन मैं तो संसार की आँच में इसी तरह जलती रहूँगी!

प्रकाश : तुम्हारे लिए कोई चारा नहीं है, नलिनी! तुम्हें समाज की

व्यवस्था रखनी चाहिए। मेरा दुर्भाग्य था कि तुम मेरी नहीं हो सकीं, नहीं तो हम दोनों का जीवन देखकर स्वर्ग-सुख को भी ईर्ष्या होती। खैर जाने दो! यही बहुत है कि मैं कभी-कभी तुम्हारे दर्शन कर लिया करूँ!

नलिनी : लेकिन इस तरह तो तुम हमेशा जेल से बाहर नहीं निकल सकते?

प्रकाश : न सही। कोशिश करूँगा। सफल हो जाऊंगा तो भाग्य, नहीं तो तुम्हारी स्मृति ही क्या कम है? उसके साथ मैं जीवन भर खेल सकता हूँ!

नलिनी : [विह्वल होकर] ओह, तुमने मेरे लिए बड़ा भारी त्याग किया प्रकाश! आज तुम स्वतन्त्र भी नहीं हो!

प्रकाश : जब तुम मुझसे छीन ली गई तो स्वतन्त्रता मिलने पर भी क्या होता? इसीलिए जेल में बन्द रहना मुझे बुरा नहीं मालूम हुआ, [थोड़ी देर चुप रहकर] और जब तुम मुझे नहीं मिलीं, तो संसार की कोई चीज़ मुझे नहीं मिली। फिर चाहे चोर की तरह रहूँ, या साहूकार की तरह, एकही बात है।

नलिनी : प्रकाश, मेरे कारण तुम्हें इतना कष्ट हुआ! मैं मर जाऊँ तो अच्छा है।

प्रकाश : फिर एक जुर्म और मेरे सिर पर हो। अभी फ़रार हूँ फिर क़त्ल के मामले में भी गिरफ़्तार किया जाऊँ! और अपनी नलिनी के क़त्ल के मामले में! ऐं?

नलिनी : तो मैं ही क़त्ल के मामले में फँस कर अपने को ख़त्म कर दूँ, तो कैसा?

प्रकाश : [हँसकर] किसका क़त्ल करोगी!

नलिनी : [रुकते हुए सोच कर] किसका बतलाऊँ? [एकबार ही] अपने पतिदेव का!

प्रकाश : हिश्...क्या कहती हो नलिनी? क्या जीवनभर के लिए कलङ्क-

कालिमा में डूबोगी ? मेरे पीछे तुम अपना संसार इस तरह पाप की छाया से काला बनाओगी ?

नलिनी : पाप कहते किसे हैं ? संसार ने अपने स्वार्थ के लिए ही पाप और पुण्य के रोड़े अटकाए हैं। इनके बिना जीवन का रास्ता कितना सीधा और सुखमय होता !

प्रकाश : नलिनी, इतनी भावुक मत बनो । पाप उसे कहते हैं जिससे समाज के विकास में बाधा पड़े। तुम्हारा इतना अच्छा परिवार है। पतिदेव हैं पुलिस इन्स्पेक्टर, सभ्य और बड़े आदमी। चैन की जिन्दगी। खाना-पीना, नाच तमाशे देखना। दावत, ऐट्होम, समाज में मान। और आदमी को चाहिए क्या ? तुम तो सब तरह से सुखी हो। प्रकाश का क्या है ? एक फूल की तरह खिला और मुरझा गया ! क्या एक फूल के पीछे माली अपना बाग़ उजाड़ दे ? यह तो संसार का क्रम है, चलता ही रहेगा। अच्छा हाँ, कैसे हैं तुम्हारे पतिदेव ?

नलिनी : अच्छे हैं । [दीवालपर लगे हुए चित्र की ओर देखते हुए] मेरी उमरसे दुगुने से भी ज़्यादा-४८ वर्ष के होंगे। दूसरे विवाह में वे पहले विवाह की ग़लतियाँ नहीं दोहराना चाहते ! ऐसे लगते हैं जैसे समुद्र-तूफ़ान के बाद छोटी-छोटी लहरों में खेल रहा है। बहुत शान्त हैं। सब तरह के सुख मुझे देना चाहते हैं, लेकिन मेरा मन कुछ गिरा-गिरा-सा रहता है, इसलिए उन्हें हमेशा सन्देह होता रहता है कि मैं किसी और को तो प्रेम नहीं करती। और यह सिर्फ़ मेरा हृदय जानता है या जानते हैं...प्रकाश !

प्रकाश : [चित्रकी ओर संकेत करते हुए] तुम दोनों की तसवीरें तो बड़ी अच्छी हैं, जैसे जीवन के दो चित्र हैं। और मैं ? मेरी बात भूल जाओ, नलिनी ! समझ लो कि हमारे जीवन की यह फेरी खाली ही गई। भटकते ही रहे, आपस में मिल भी नहीं सके। तुम्हें तो समाज और संसार की मर्यादा निबाहनी ही है। अधिक से अधिक पतिदेव को सुख देने की चेष्टा करनी चाहिए।

नलिनी : मैं उन्हें क्या सुख दे सकूँगी ?

प्रकाश : क्यों नहीं, वे पुलिस–इन्स्पेक्टर हैं, मैं एक फ़रार हूँ । मुझपर इनाम बोला गया है जानती हो, नलिनी, १००० ! यह एक हज़ार रुपया तुम अपने पति–देव को आसानी से दिला सकती हो । मुझे गिरफ़्तार करा दो ।

नलिनी : कैसी बातें करते हो प्रकाश ? मैं तुम्हें गिरफ़्तार करा दूँ ? यह असम्भव है । रात अपने एक ही चाँदको तोड़कर फेंक दे जिससे अँधेरे में चोरों को आसानी हो जाय । क्या तुम मुझे जानते नहीं हो, प्रकाश ?

प्रकाश : जानता हूँ, नलिनी ! तुमने हमेशा मेरी चिन्ता की है । स्वयं कष्ट सह कर मुझे सुख पहुँचाने की चेष्टा की है ! अब तो मेरी मुसीबत की ज़िन्दगी ही है । आज यहाँ हूँ, कल दूसरी जगह चला ज ऊं ! किसी पहाड़ के अँधेरे में, कभी नदी की लहरों पर ! अँधेरे में छिपा रहता हूँ, जैसे कोई बुझा हुआ सितारा हो ! और तुम मेरी ओर अब भी अनिमेष नेत्रों से देख रही हो । अब मेरे लिए अधिक कष्ट उठाने की आवश्यकता नहीं । नलिनी यही बहुत है कि कभी-कभी मुझे तुम्हारे पत्र मिल जाते हैं, जो मेरी ज़िन्दगी की अँधेरी रात में ध्रुवतारे का काम करते हैं ।

नलिनी : मैं अपनी जान देकर भी तुम्हें सुखी करना चाहती हूँ प्रकाश ! मैं तो ऐसी मुसीबत में हूँ कि कुछ कह नहीं सकती । तुम्हारी ओर बढ़ूं तो पतिदेव की सन्देह भरी आँख हाथ से रिवाल्वर उठाने के लिए कह दे ! पुलिस-इन्स्पेक्टर तो हैं ही । गोली चलाना उनके लिए कोई बड़ी बात नहीं है । लेकिन मुझे उसकी भी चिन्ता नहीं है । मुझे तो चिन्ता है तुम्हारे उच्च आदर्श की, देशसेवा की और अपने पिताजी के सम्मान के कलंकित होने की । अनेक बार सोचती हूँ कि आत्म–हत्या कर लूँ, लेकिन मैं ऐसा इसलिए नहीं करती कि फिर मैं अपने प्रकाश को न देख सकूँगी ।

प्रकाश : नहीं, आत्म–हत्या करना पाप होता है, नलिनी ! यह

बात स्वप्न में भी मत सोचना। आत्म-हत्या तो मैं भी कर सकता था। लेकिन सच्चे मनुष्य वही हैं जो मुसीबतों का सामना करते हुए चट्टान की तरह खड़े रहें। मुसीबतों के ज्वार-भाटे तो आया ही करते हैं!

नलिनी : तुम मनुष्य-रत्न हो, प्रकाश!

प्रकाश : और तुम? यही देखो, मैं तीन महीने से फ़रार हूँ। इस बीच में दर्जनों पत्र मैंने तुम्हें लिखे और तुमने मुझे। यदि तुम चाहतीं तो मुझे आसानी से गिरफ़्तार करा देतीं। लेकिन तुमने यह नहीं किया। मेरे विश्वास की इतनी बड़ी रक्षा! नलिनी, तुम देवी हो!

नलिनी : मैं देवी हूँ या दानवी, यह कौन जाने? मेरे जीवन की सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि मैं तुम्हें चाहते हुए भी तुमस नहीं मिल सकती और दाम्पत्य-जीवन की विडम्बना यह है कि पति से प्यार न करते हुए भी उनसे प्यार का अभिनय करती हूँ-उनसे विश्वास घात करती हूँ! तुम्हारा पता जानते हुए भी मैं तुम्हें उनसे छिपाए रहती हूँ। वे बेचारे तुम्हारी वजह से बहुत परेशान हैं। रात-दिन तुम्हें खोज निकालने की चिन्ता उन्हें बनी रहती है। समाचार-पत्रों में तुम्हारा फ़ोटो देखकर वे रात-दिन तुम्हारी शक्ल लोगों में खोजा करते है! मैं तो अपने जीवन को ही सब से बड़ा धोखा समझती हूँ।

प्रकाश : अच्छी बात है, तो अब से तुम अपने जीवन की विडम्बना का अन्त कर दो। मैं तुम से न मिलूँ और तुम मेरी बात मत सोचो। समझ लो कि कॉलेज-जीवन के वे दिन सपने थे और वैवाहिक-जीवन का सूरज निकलने पर वे सब समाप्त हो गए! तुम अपने पतिदेव की सच्ची पत्नी बनो, नालिनी! सब बातें भूल जाओ!

नलिनी : क्यों प्रकाश, क्या प्रेम दो बार किया जा सकता है? तुम से प्रेम करने के अनन्तर अब क्या मैं तुम्हें छोड़ कर किसी दूसरे से प्रेम कर सकती हूँ? बनावटी प्रेम करना प्रेम का सब से बड़ा अपमान है। फिर जब तुम अँधेरी रातों में भटकते फिरते हो, तो मेरे लिए सुख की

नींद सोना क्या मेरे लिए सब से बड़ा अपराध नहीं है ? [बाहर साढे छः का घण्टा बजता है । नलिनी और प्रकाश चौंक पड़ते हैं ।]

प्रकाश : अच्छा नलिनी ! अब जाऊँगा । [उठता है] मैं इतनी स्वतन्त्रता से बातें नहीं कर सकता । मुझे तो चारों दिशाओं में गिरफ़्तारी के वारन्ट नज़र आते हैं । हाँ, देखो अपने पतिदेव के साथ प्रेम के साथ रहना । कभी भूले-भटके मेरी याद कर सको तो कर लेना ! मेरा नया पता यह है । अब मैंने पुरानी जगह छोड़ दी है [एक कागज निकालकर देता है ।] लेकिन यह पता केवल तुम्हीं को मालूम रहना चाहिए। यदि किसी दूसरे व्यक्ति के हाथ में पड़ा तो वह रुपये के लोभ से मुझे किसी भी क्षण पकड़ा देगा । फिर मैं तुमसे सदा के लिए दूर हो जाऊंगा, नलिनी ! हो सके तो यह पता स्मरण कर इसे जला देना । अपने जीवन की कुछ बातें मैंने इसमें और लिख दी हैं । अवकाश में पढ़ लेना ! मेरा नया पता है—प्रकाशचन्द्र, १५ हैमिल्टन पार्क, रामगंज । और मेरी नलिनी, अपने जीवन को.....[बाहर खट्-खट् की आवाज] ओह, अब मैं जाऊँ ! कोई आ रहा है ।

नलिनी : प्रकाश ... मेरे प्रकाश... तुम सुख से रहना । ओह... प्रकाश !

[प्रकाश शीघ्रता में अपना भगवा वस्त्र उठा कर दूसरे दरवाज़े से जाता है, किन्तु डाढ़ी-मूंछ भूल जाता है । नलिनी प्रकाश के जाने पर दरवाजा बन्द करती है और कागज़ को टेबुल के ड्रॉअर में रखती है । प्रथम दरवाज़े पर जाकर पूछती है ।]

नलिनी : कौन है ? [बाहर से फिर खट्-खट् की आवाज़ । नलिनी दरवाजा खोलती है, एकाएक चौंक कर पीछे हटती है । नलिनी के पति राज बहादुर का प्रवेश । ४८ वर्ष के व्यक्ति । बालों में सफ़ेदी आगई है । पुलिस की वर्दी पहने हुए हैं । कमर में बेल्ट जिसमें कारतूस हैं । हाथ में एक पतली छड़ी है । आते ही वे नलिनी को गहरी दृष्टि से देखते हैं]

राज : किसी से बातें हो रहीं थीं ?

नलिनी : [अव्यवस्थित स्वर में] बातें...नहीं नहीं, किसी से नहीं ! मैं किससे बातें करूँगी ? लेकिन आप बहुत जल्द सिनेमा से लौट आए ? क्या फ़िल्म ठीक नहीं थी ?

राज : फ़िल्म तो ठीक थी, लेकिन मेरी तबियत ठीक नहीं थी ! मैं चला आया ! सोचा तुम अकेली होगी। तुम्हें बुरा लग रहा होगा। लेकिन दरवाज़े पर आकर दो मिनट रुक कर सुना, तो मालूम हुआ तुम किसी से बातें कर रही हो !

नलिनी : कुछ नहीं, थोड़ी देर के लिए ललिता आई थी ! बी. ए. में पढ़ती है। लेकिन आप बहुत थके हुए मालूम देते हैं !

राज : नहीं थका हुआ तो नहीं हूँ। लेकिन यह ललिता कौन है ? [कमरे में टहलते हैं।] अभी तक तो ललिता का नाम सुना नहीं था !

नलिनी : तो क्या हरएक लड़की आप को अपना नाम सुनाती फिरे ? वह पढ़ती है यहाँ बी. ए. में। बड़ी होशियार लड़की है। बहुत 'सोशल' है। डिबेट में और ऐक्टिंग में नाम कर चुकी है। ऐक्टिंग तो बहुत अच्छा करती है !

राज : तुमसे भी अच्छा ?

नलिनी : [तीव्र स्वर में] कैसी बातें करते हैं आप ? मैंने आप के सामने कब ऐक्टिङ्ग किया है ? आप नहीं जानते कि आप मुझे किस तरह अपमानित कर रहे हैं ! और मेरे साथ ललिता को भी !

राज : मैं किसी का अपमान नहीं करता नलिनी ! सोच रहा हूँ ललिता के बारे में ! [सोचते हुए] ललिता ! बी. ए. में पढ़ती है ! अच्छा, और वह ललिता अपनी दाढ़ी और मूँछ यहाँ क्यों छोड़ गई है ?

नलिनी : कैसी दाढ़ी-मूँछ ?

राज : यही तो, इस टेबुल पर रक्खी है ! [नकली दाढ़ी और मूंछ उठाते है।] क्या इस बीसवीं सदी में बी. ए. में पढ़नेवाली लड़कियों के दाढ़ी और मूँछ भी निकला करती हैं। और वे उन्हें अपनी सुविधानुसार अलग भी निकालकर रख सकती हैं ! वाह !

नलिनी : [सँभल कर] दाढ़ी और मूँछ !...ओ...मैंने कहा न, ललिता बी. ए.में पढ़ती है। उसके कालेज में एक नाटक होनेवाला है। उसमें उसने

एक 'मेल पार्ट' लिया है। उसी मेल पार्ट का ऐक्टिङ्ग वह यहाँ कर रही थी। वह शायद दाढ़ी और मूँछ अपने साथ लाई होगी। सोचा होगा, दाढ़ी-मूँछ लगा कर ऐक्टिङ्ग करने में कैसा लगता है! [हँस कर] बड़ी विचित्र है ललिता, अपने साथ दाढ़ी और मूँछ भी ले आई! जैसे आज ही ग्रैंड-रिहर्सल है।

राज : [सोचते हुए] क्या यह ठीक है? हाँ, हो सकता है। लड़कियाँ भी मेल पार्ट लेती हैं। तुम्हीं ठीक कह रही हो। शायद मैं ही ग़लती पर हूँ। माफ़ करना, मेरे मन में कभी-कभी बे सिर पैर की बातें उठ खड़ी होती हैं। मैं अपने मन को हज़ार बार समझाता हूँ, लेकिन वह बहक ही जाता है।

नलिनी : किस बात पर?

राज : [बात उड़ाते हुए] किसी बात पर नहीं। बहुत काम करता हूँ। दिमाग़ कभी-कभी चक्कर खाने लगता है। और उस कमबख़्त प्रकाश ने तो मुझे इतना परेशान कर रक्खा है! एक स्थान से दूसरे स्थान में इस तरह ग़ायब हो जाता है जैसे एलेक्ट्रिक करेंट। इतना हिम्मती है कि बड़ी-बड़ी नदियाँ पार कर जाता है। प्राणों का मोह तो उसे है ही नहीं। [नलिनी मुस्कराती है।] तुम मुस्करा रही हो।

नलिनी : नहीं, सोच रही हूँ कि तुमने न जाने कितने आदमियों को गिरफ़्तार किया है। अब दूसरे आदमियों के लिए भी तो कुछ काम रहने दो। सब काम तुम्हीं कर लोगे तो दूसरों के लिए क्या काम रहेगा? कुछ नाश्ता लाऊँ? [टेबिल के ड्रॉअर में से कागज निकाल कर चलती है।]

राज : थोड़ी देर बाद। अभी इच्छा नहीं है। हाँ, कोतवाली से काग़ज़ तो नहीं आए?

नलिनी : [अपने हाथ में प्रकाश के पत्र को छिपाने की चेष्टा करते हुए] नहीं कोई नहीं आया।

राज : यह तुम्हारे हाथ में कैसा काग़ज है?

नलिनी : कुछ नहीं—वह उसी ललिता के पार्ट का एक पन्ना रह गया है। मैं उसे देना भूल गई।

राज : देखूँ, कैसा पार्ट है ?

नलिनी : वाह, आप लड़कियों का पार्ट पढ़ेंगे ? सरकारी काग़ज़ पढ़ने वाले अब लड़कियों के पार्ट पढ़ेंगे ! आप भी कैसी बातें करते हैं !

राज : क्या मैं सरकारी काग़ज़ों के सिवाय कुछ पढ़ना ही नहीं जानता ? देखूँ-देखूँ कैसा पार्ट है ? किस नाटक का है ?

नलिनी : होगा किसी नाटक का ! अपको इन बातों में कौन-सी दिल-चस्पी है ?

राज : है, लेकिन तुम्हें दिखलाने में क्या आपत्ति है ?

नलिनी : उसने बड़ी मेहनत से लिखा होगा, कहीं खो जाय तो ?

राज : मेरे पढ़ने से खो जायगा ? यों ही मेरी पढ़ने की तबियत है। तुम उसे देखने क्यों नहीं देतीं ? [हाथ बढ़ाता है।]

नलिनी : [हाथ हटाकर] नहीं-नहीं, आप उसका लिखा हुआ क्या पढ़ेंगे !

राज : क्यों, क्या लड़कियों के लिखे हुए पार्ट को देखना पाप है ? देखूँगा कि ललिता कैसा लिखती है ?

नलिनी : क्या कोई पुरस्कार देंगे ?

राज : [तीव्र स्वर में] देखो नलिनी, तुम हमेशा मेरी बातें काट देती हो। मैं वह काग़ज़ ज़रूर पढ़ूँगा और पढ़ के रहूँगा। मैं तुम्हारे सामने दिनो-दिन कोमल बनता जाता हूँ और तुम कठोर बनती जाती हो। मेरे मन में सौ बार यह बात उठी है कि तुम मुझसे ज़्यादा प्रेम करती हो या मैं तुम से ज़्यादा प्रेम करता हूँ। लेकिन मुझे ऐसा जान पड़ता है कि तुम मेरा साथ नहीं देना चाहतीं। बोलो, दोगी वह काग़ज़ मुझे ?

नलिनी : आप बाहर के चोर-डाकुओं से बातें कर के आते हैं तो आपका दिमाग़ ख़राब हो जाता है ! आप न जाने कैसी-कैसी बातें करने लगते

हैं। और मैं उनके अनुसार आप से बातें नहीं करती तो आप मुझ पर सन्देह करने लगते हैं। आप दिन-रात मेरा अपमान करते रहते हैं! मैं ज़हर के घूँट पीते-पीते थक गई हूँ। किसी दिन सचमुच ज़हर पी लूँगी तो अपनी ज़िन्दगी पर मेरी मौत का कलङ्क लेकर नौकरी कीजिएगा! [आँखों में आँसू भर आते हैं।]

राज : [द्रवित होकर] नलिनी, मुझे माफ़ करो। पुलिस-डिपार्टमेन्ट में काम करते-करते मेरा स्वभाव बहुत रूखा हो गया है। मैं तुम्हारे विचारों की ऊँचाई तक नहीं पहुँच सकता, नलिनी। तुम पढ़ी-लिखी विदुषी हो और मैं—तुम ठीक कहती हो—चोर और डाकुओं के बीच में रहनेवाला एक राक्षस! तुम देवी हो! आओ मेरे पास। [उठकर समीप जाता है और नलिनी की असावधानी में वह कागज छीन लेता है।]

राज : यह रहा काग़ज़! [नलिनी उस कागज को पाने के लिए प्रयत्न करती है, किन्तु वह असफल होती है। राजबहादुर उस कागज को एक हाथ में लेकर पढ़ता है।] प्रिये, प्रियतमे [सिर पकड़कर] ओह! यह क्या पढ़ रहा हूँ! [नलिनी को धक्का देकर दूर करता है।] ओह, यह पार्ट है, ललिता का पार्ट है! धोखेबाज़, मक्कार!

नलिनी : देखिए, आप किसी स्त्री का पत्र नहीं पढ़ सकते। वह ललिता का पत्र है। उसके किसी प्रेमी ने लिखा है! वह पत्र मुझे दीजिए, दीजिए! [आगे बढ़ती है।]

राज : [हटकर] वह प्रेमी ललिता का है, या तुम्हारा? ओह! मैं अभी तक कितना मूर्ख रहा! बेवकूफ़ बनकर तुम्हारी बातें ध्यान से सुनता रहा।

नलिनी : [बीच ही में] देखिए, वह पत्र आप न पढ़िए। बेचारी ललिता कहीं की न रहेगी। उसके सम्मान की रक्षा करना आपका परम कर्त्तव्य है। आपको मेरी बात माननी होगी, मैं कहती हूँ!

राज : बहुत मान चुका। अब तुम्हारी मीठी-मीठी चालबाज़ियों में नहीं आ सकूँगा। मुझे अपनी बेवकूफ़ी पर खुद शर्म आती है कि पुलिस

डिपार्टमेन्ट में रहकर मैं तुम्हारी बातों में कितना विश्वास करता रहा। लेकिन...कौन मर्द औरत की बातों में विश्वास न करे ? ओह, मैं मर्द होकर तुम्हारी स्त्री बनकर रहा ! स्त्री की स्त्री बन कर रहा ! धिक्कार है मुझे !

नलिनी : देखिए, मैं आपके हाथ जोड़ती हूँ। वह पत्र आप न पढ़ें। मैं आपकी दासी हूँ। स्त्री हूँ। आप तो मेरे स्वामी हैं, प्रियतम् हैं। लेकिन यह सभ्यता के ख़िलाफ़ है कि आप ग़ैर स्त्री का पत्र पढ़ें।

राज : ग़ैर स्त्री ? तुम ग़ैर स्त्री हो ! हाँ, हो। अभी तक मैं अन्धा था। मैं समझता रहा कि नलिनी मेरी स्त्री है। अब समझ सका कि वह किसी दूसरे की स्त्री है, जो उसका प्रियतम् है। मैंने तुझसे व्यर्थ विवाह किया। जानते हुए कि मैं ४८ वर्ष का हूँ। मैंने १८ वर्ष की लड़की से विवाह किया। किन्तु मैं क्या जानता था कि ४८ और १८ में उजेले और अँधेरे की दूरी है।

नलिनी : आप कैसी बातें करते हैं, प्रियतम् ! आप मेरे लिए देवता से भी बढ़कर हैं। मैं आपके चरणों की दासी !

राज : चुप रहो ! नलिनी, ये सुनहले सपने बहुत देख चुका। अब और देखने की ताक़त नहीं है। सच है एक बुड्ढे की युवती स्त्री कब तक सच्ची रह सकती है ?

नलिनी : देखिए आप स्त्री-जाति का अपमान कर रहे हैं !

राज : मैं नहीं कर रहा हूँ। यह पत्र कर रहा है ! देवी, ओह मैं देवी शब्द को कलङ्कित कर रहा हूँ। दानवी, हाँ दानवी ! मेरे ख़ून को शर्बत बनाकर पीनेवाली, दानवी ! बोलो दानवी जी ! तुम पतिव्रता हो ?

नलिनी : आप कैसी बातें कर रहे हैं ?

राज : चुप रहो। तुम इसीलिए यह पत्र छिपा रही थीं ! मैंने इस पत्र में देखलिया है कि 'प्रिये नलिनी' भी लिखा हुआ है ! यह ललिता का पार्ट है ! झूठ, मक्कार ! यह ललिता का पार्ट है ! और नाटक तुम मुझसे कर रही हो ! बोलो, यह किसका पत्र है ?

नलिनी : [क्षणभर शान्ति में रुककर] आप पढ़ सकते हैं !

राज : हाँ, मैं इसे पढ़ूँगा और अवश्य पढ़ूँगा । लेकिन तुम इस पत्र को छीन नहीं सकतीं ! [रिवाल्वर निकालता है ।] वहीं खड़ी रहो । अगर एक क़दम भी आगे बढ़ीं तो यह रिवाल्वर अपना काम करेगा । [पत्र खोलता है और सरसरी निगाह से पढ़ता है ।] ओह ! प्रकाश...वही प्रकाश तुम्हारा प्रेमी है ! नीच, नारकी ! और यह स्त्री, पुलिस आफ़िसर की पत्नी होकर चोर और डाकुओं से प्रेम करे ?

नलिनी : [दृढ होकर] प्रकाश चोर और डाकू नहीं है, वह देश-भक्त है । देवता है ।

राज : और तुम उसकी देवी हो ! निर्लज्जा, मेरी स्त्री होते हुए तुम्हें शर्म नहीं आई ! कहाँ है वह ? [स्मरण कर] ओह, वही छिपकर आया था ! उसीकी यह दाढ़ी–मूँछ है ! मुझे सिनेमा भेजने का यही राज़ था ! मेरे चले जाने पर अपने प्रेमी से बातें ! कहाँ है वह ? मैं उसकी खोज में परेशान होऊँ और वह मेरे घर में ही मौजूद हो और मेरी स्त्री से प्रेम करे...ओफ़... अब नहीं सह सकता ! बोलो, वह कहाँ है ?

नलिनी : [दृढ़ता से] मैं नहीं जानती !

राज : उससे अभी कुछ मिनट पहले बातें कर चुकी हैं और आप उसे नहीं जानतीं ? बोलिए श्रीमती जी, मुझे प्रकाश का पता दीजिए... [हँस कर] ओह और १००० रु. का पुरस्कार ! जल्दी कीजिए... जल्दी कीजिए, मेरे पास समय नहीं है ।

नलिनी : आप उसे नहीं पा सकते ।

राज : [तीव्र दृष्टिसे देखते हुए] यह बात ? तो फिर श्रीमती जी आप भी उसे नहीं पा सकतीं । सीधी खड़ी होइए ! मैं ऐसी दुराचारिणी स्त्री को संसार में नहीं रहने दूँगा । देखा जायगा बाद में जो होगा ! कहिए, आप तैयार हैं मरने के लिए ?

नलिनी : आपके हाथ से मरने में मेरा सौभाग्य है !

राज : ओहो ! पतिव्रता जी ! मेरे हाथ से मरने में आपका सौभाग्य है ! ठीक है, मैं आपको यह सौभाग्य दूँगा। लेकिन इतनी सुन्दर स्त्री को मैं एक बार में नहीं मार सकता ! बोलिए आपकी अन्तिम इच्छा क्या है ?

[नलिनी सिसक-सिसक कर रोने लगती है।]

राज : मैं इस रोने से पिघल नहीं सकता, श्रीमती जी ! ललिता से आप अच्छा अभिनय कर सकती हैं, यह पहले ही मैं जानता था। देखिए, रोते-रोते मरना अच्छी बात नहीं है ! स्वर्ग की देवियाँ या नरक की दानवियाँ आपका स्वागत करेंगी तो आपकी आँखों में आँसू अच्छे नहीं लगेंगे ! चुप होइए ! बस...बस...कल अखबार में निकलेगा कि श्री राज बहादुर ने अपनी स्त्री का खून किया !...या श्री राज बहादुर की स्त्री ने अपनी आत्म-हत्या की, जो कुछ भी हो। लेकिन मैं चाहता हूँ कि आपकी लाश की आँखों में आँसू के क़तरे न उलझे हों। अगर आपकी आँखों में आँसू होंगे तो मैं साफ़ बच जाऊँगा। आपने पहले खूब रो लिया है, फिर आत्म-हत्या की है। लेकिन अगर आपकी आँखों में आँसू न हुए तो मेरा क़त्ल करना साबित हो जायगा। इसलिए यदि आप चाहती हैं कि मैं फाँसी पर लटकूं तो आप मेहरबानी करके रोना बन्द कर दीजिए। बिल्कुल बन्द कर दीजिए...[नलिनी रोना बन्द कर देती है।] बिल्कुल ठीक ! आपसे मुझे यही आशा थी। अब आप सिर्फ़ दो बातें बतला दीजिए। एक तो अपने प्रेमी प्रकाश का पता, जिससे मैं १००० रुपया पा सकूँ। दूसरी बात यह कि अभी तक जो आपने मेरे साथ नाटक किया है, इसका राज क्या था ? आपने साफ़-साफ़ मुझसे क्यों नहीं कह दिया कि मैं प्रकाश को चाहती हूँ ?

नलिनी : मैं दोनों बातें ही अपने मुख से नहीं बतला सकती !

राज : तो कौन बतलायेगा ?

नलिनी : मैं नहीं जानती।

राज : न बतलाइए ! मैं प्रकाश का पता लगा ही लूँगा और वह कभी न कभी जेल में जायगा ही, सवाल सिर्फ़ समय का है कि कब ? दूसरी बात मैं अपनी जिन्दगी में आसानी से भुला सकता हूँ। अच्छा अब मरने के पहले आप अपनी अन्तिम इच्छा बतलाइए ! बतलाइए ! वन्...टू...

नलिनी : मेरी अन्तिम इच्छा यह है कि आप प्रकाश को अवश्य पकड़ें और उसे ऐसी सजा दें कि वह जीवनभर के लिए बेकाम हो जाय। इसी अन्तिम इच्छा के साथ मैं मरना चाहती हूँ।

राज : आश्चर्य से] अच्छा, मरते समय अपने प्रेमी से भी विश्वासघात !

नलिनी : वह मेरा प्रेमी कहाँ है ? वह तो हमें धनवान् बनानेवाला एक अभागा व्यक्ति मात्र है। वह मेरे साथ पढ़ता था। मेरी उससे जान-पहिचान थी। तीन महीने पहले जब वह फ़रार हुआ और उस पर इनाम बोला गया, तो मैंने ऐसे मौक़े पर अपनी जान-पहिचानवाली शतरञ्ज की चाल चली। उससे प्रेम करने का नाटक किया और वह आज हमारे पञ्जे में है। जो काम आप नहीं कर सके, वह मैंने कर लिया, कहिए यह मेरा आपके साथ विश्वासघात है ? उसके इसी प्रेम-पत्र में उसका पता लिखा हुआ है। पढ़िए-१५, हैमिल्टन पार्क, रामगञ्ज। १००० रु. आपके हैं और मेरे हैं।

राज : [पत्र पढ़कर उमंग से] वाह नलिनी ! सचमुच यह पता लिखा हुआ है-१५, हैमिल्टन पार्क, रामगंज। ओह ! मुझे क्षमा करो नलिनी, मैं समझ गया कि तुम्हारी चतुराई मेरे सब कामों से बढ़कर है।

नलिनी : लेकिन मैं विश्वासघातिनी हूँ ! मक्कार हूँ ! [आँखों में आँसू]

राज : तुम देवी हो नलिनी, प्रथम श्रेणी की पतिव्रता। ओह ! मैंने पाप किया है। सती-साध्वी देवी का अपमान कर मुझे नरक में भी स्थान नहीं मिलेगा। मुझे क्षमा करो देवी, मुझे क्षमा करो ! [हाथ जोड़ता है।]

नलिनी : आप मुझे लज्जित न कीजिये प्रियतम्, मैं तो आपकी चरण-सेविका हूँ। आपने व्यर्थ ही मुझ पर सन्देह किया !

राज : उसके लिए मैं लज्जित हूँ। कहो कि मैंने तुम्हें क्षमा किया।

नलिनी : ऐसा मैं कह नहीं सकती, प्रियतम्!

राज : ओह, तुमने मेरे गौरव के लिए इतना परिश्रम किया! फ़रार व्यक्ति का पता लगा लिया! मैं तो प्रत्येक पुलिस आफ़िसर से कहूँगा कि फ़रार हुए व्यक्ति का पता लगाने के लिए वे अपनी पत्नी से नलिनी देवी का उदाहरण लेने को कहें। ओह, तुम कितनी समझदार हो! कितनी बुद्धिमती हो! तुम्हें पाकर मैं धन्य हो गया!

नलिनी : यह तो मेरा कर्त्तव्य था, जो मैंने सफलता से निभाया।

राज : अच्छा तो अब आज ही रामगञ्ज चल दूँ और तुम्हें १००० रुपया सौंप दूँ! ओह मेरी नलिनी, तुम कितनी अच्छी हो, जिस तरह तुम्हारा मुख इतना सुन्दर है, उसी तरह तुम्हारी बुद्धि भी सुन्दर है। लोग कहते हैं कॉलेज में पढ़ने से लड़कियाँ बिगड़ जाती हैं। वे अहमक़ हैं, नालायक़ हैं। मेरी नलिनी को देखें। एम. ए. पास कर मेरे कामों में ऐसी सहायता देती है कि रुपया और मान मेरे पैरों पर लोट रहा है!

नलिनी : यह सब आपकी कृपा है।

राज : नहीं नलिनी, प्रत्येक पुलिस आफ़िसर को एम. ए. पास लड़की से शादी करनी चाहिए। उनकी बहुत-सी मुश्किलें आसान हो जाएँगी! अच्छा तो मैं अब चलता हूँ।

नलिनी : इतनी उतावली करने की क्या आवश्यकता है। आप थके हुए हैं। ज़रा आराम कीजिए। कल सुबह आप चल दीजिएगा, अभी तो प्रकाश रामगञ्ज में चार दिन ठहरेंगे।

राज : [सोचकर] हाँ, तुम भी ठीक कहती हो। मैं थक गया हूँ। मेरे सिर में भी कुछ दर्द है।

नलिनी : आप अपने कपड़े बदल लीजिए। मैं बिस्तर ले आती हूँ, आप थोड़ा आराम कीजिये, फिर सेकेण्ड शो हम दोनों साथही देखेंगे।

राज : अच्छी बात है। यह रिवाल्वर वहाँ रख दो। देखो संभालकर

रखना। गोली भरी है। बड़े रूम की टेबिल के ऊपरी ड्रॉअर में!

नलिनी : बहुत अच्छा [रिवाल्वर ले लेती है। फिर तनकर सामने खड़ी होती है।] मि. राज बहादुर! मैं प्रकाश को प्रेम करती हूँ। एक देशभक्त को प्रेम करती हूँ। तुमने उसका पत्र छीन लिया। मैं तुमसे तुम्हारी जान छीनूँगी। बोलो! दोनों में से कौन सी चीज़ प्यारी है?

राज : [घबड़ाकर] अरे–अरे नलिनी, यह क्या! अरे, तुम कैसी बातें करती हो?

नलिनी : ख़ामोश! तुम प्रकाश का पता भी जान गए हो। पत्र अगर लौटा भी दो, तो तुम उसका पता भूल सकोगे?

राज : अरे, तुम तो कहती थीं कि यह तुम्हारी शतरंज की एक चाल थी! क्या तुम प्रकाश से सचमुच प्रेम करती हो?

नलिनी : एक बार नहीं सौ बार! प्रेम विवाह का ग़ुलाम नहीं है, मि. इन्स्पेक्टर! बोलो तुम प्रकाश का पता भूल सकोगे?

राज : प्रकाश का पता.....१५, हैमिल्टन पार्क.....

नलिनी : चुप रहो! ज़ोर से मत बोलो। कोई सुन लेगा। मैं प्रकाश को गिरफ़्तार नहीं करा सकती। उसके विश्वास को नहीं तोड़ सकती!

राज : और मेरे विश्वास को तोड़ सकती हो?

नलिनी : तुमने मुझपर विश्वास ही कब किया? सदैव सन्देह की दृष्टि से देखते रहे! और फिर ४८ वर्ष के बूढ़े आदमी से १८ वर्ष की लड़की प्रेम नहीं कर सकती! आप मेरे पिता हो सकते हैं, पति नहीं, मि. इन्स्पेक्टर!

राज : नलिनी, तुम कैसी बातें करती हो! और तुम प्रकाश को गिरफ़्तार कराकर इनाम नहीं लोगी। इस इनाम को पाकर यों ही छोड़ दोगी? मेरा पुरस्कार!

नलिनी : अब मौत ही तुम्हारा पुरस्कार है। तुम प्रकाश का पता भूल सकोगे? लेकिन तुम क्या भूल सकते हो?...मैं तुम्हें बचा नहीं

सकती। तुम्हें बचाने में मैं प्रकाश को खो दूँगी। बोलो, अन्तिम समय तुम क्या चाहते हो? वन्...टू...

राज : मैं...मैं...नलिनी...तुम कैसी...[कुर्सी से उठता है।]

नलिनी : वहीं बैठे रहो! आगे बढ़ोगे तो गोली चला दूँगी!

राज : स्त्री अपने पुरुष को मारे!

नलिनी : मैं तो केवल कर्त्तव्य पालन कर रही थी, लेकिन जब मेरे प्रकाश के जीवन का भय है तो मैं उस कर्त्तव्य को समाप्त करती हूँ। वहीं बैठे रहो!

राज : दोनों हाथ ऊपर उठाते हुए [भर्राए स्वर में] अरे यह क्या नलिनी! ओह, तुम मुझे चिल्लाने भी नहीं दे रही हो! मैं तुम्हारा पति हूँ नलिनी! पुरस्कार क्यों नहीं चाहिए? मैं मर जाऊँगा। मुझे जीने दो नलिनी, मुझे पुरस्कार नहीं चाहिए।

नलिनी : यह पुरस्कार लो। [नलिनी पिस्तौल चलाना ही चाहती है कि नेपथ्य से प्रकाश आकर नलिनी का हाथ पकड़ लेता है।]

प्रकाश : सावधान नलिनी! पहले मुझ पर गोली चलाओ!

राज : [विक्षिप्त स्वर में] एं, तुम कौन? तुम कौन हो? कहीं प्रकाश...

प्रकाश : हाँ, मैं प्रकाश हूँ! राजनीति के जुर्म में फ़रार प्रकाश!

नलिनी : प्रकाश! मत रोको मुझे! मुझे मत रोको! तुम्हारी जान ख़तरे में है!

प्रकाश : कोई परवा नहीं, नलिनी! पिस्तौल मुझे दो! मुझे दो पिस्तौल!

[प्रकाश नलिनी के हाथों से पिस्तौल लेता है। नलिनी अपना हाथ ढीला कर देती है। नलिनी अवाक् होकर प्रकाश की ओर देखती है।]

प्रकाश : मि. राज बहादुर! आप मुझे गिरफ़्तार कर सकते हैं।

नलिनी : [चीख कर] नहीं नहीं, आप गिरफ़्तार नहीं हो सकेंगे! मुझे गिरफ़्तार करो! मैंने एक फ़रार व्यक्ति को घर में जगह दी। उसकी

रक्षा की। [राजबहादुर से] आप मुझे गिरफ़्तार कीजिए ! इन्हें छोड़ दीजिए ! छोड़ दीजिए !

राज : [चैतन्य होकर रुकते हुए स्वर में] प्रकाश ! राजद्रोह के जुर्म में फ़रार प्रकाश तुम हो ? मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा ! तुम...तुम पुलिसवालों की जान भी ले सकते हो और उन्हें बचा भी सकते हो ?

प्रकाश : मैं अन्याय नहीं देख सकता। मैं यह सहन नहीं कर सकता कि एक पत्नी अपने पति को गोली से मार दे, ख़ासकर उस वक़्त जब गोली का शिकार मुझे होना चाहिए ! आप देखते क्या हैं ? फ़रार क़ैदी आपके सामने है और आप गिरफ़्तार नहीं करते ?

राज : मैं प्रकाश को गिरफ़्तार करूं ? तुम क्या कहती हो नलिनी ?

नलिनी : मुझे गिरफ़्तार कर लीजिए ! उन्हें छोड़ दीजिए !

राज : तुम्हें ? तुम्हें गिरफ्तार करके क्या मैं उन्हें छोड़ सकता हूँ ?

नलिनी : तो उनके साथ मुझे भी गिरफ्तार कर लीजिए ! मैं भीख माँगती हूँ !

राज : [दृढ़ता से] मैं किसी को गिरफ़्तार नहीं करूँगा।

नलिनी : [प्रसन्नता से विह्वल होकर] ओह, आप कितने अच्छे हैं ! कितने अच्छे हैं !

राज : [शून्य दृष्टि से] राजनीति के जुर्म में फ़रार क़ैदी प्रकाश ! जो मरे हुए को ज़िन्दा कर दे ! [प्रकाश से] तुम भी मुझ पर गोली चला सकते हो प्रकाश ? तुम्हारे हाथ में रिवाल्वर है !

प्रकाश : मैं अपने ही भाई को मार कर अपना देश आज़ाद नहीं कर सकता। [पिस्तौल फेंक देता है।]

राज : क्या कहा ? अपने ही भाई को मार कर ! और मैंने अपने कितने निहत्थे भाइयों पर गोलियाँ चलाई हैं। उन्हें पेट के बल ज़मीन पर रेंगने को कहा है। उन्हें भेड़-बकरियों की तरह हलाल किया है ! कितनी बहनों के हाथ से झंडे छीनकर उन्हें ख़ून से नहलाया है ! उनके

सिरों पर जूतों से ठोंकरें लगाई हैं। यह सब किसलिए? इसलिए कि मैं एक विदेशी सरकार का नमक हलाल नौकर कहलाऊं! अपने भाइयों के खून से विदेशी झंडे को और भी लाल कर दूँ! [रुक कर गहरी सांस लेकर] और एक तुम हो कि तुमने अपने भाइयों के दर्द में अपनी आह मिला दी है। तुमने किसानों की झोपड़ियों में देशभक्ति के महल खड़े किये हैं। बहनों की इज़्ज़त के लिए अपने सर पर डंडों की चोटें सही हैं। किसे गिरफ़्तार होना चाहिए—तुम्हें या मुझे?

प्रकाश : मुझे, क्योंकि मुझे पुलिसवालों को इनाम दिलाकर अपने भाइयों के पैसों से उन्हें धनवान् बनाना है!

राज : तो फिर अब यहाँ पुलिसवाला कौन है? पुलिस इंस्पेक्टर राज बहादुर तो नलिनी के रिवाल्वर से मर गया! तुमने मुझे ज़िन्दा किया है! प्रकाश! तुमने मुझे ज़िन्दा किया है! अब यह राजबहादुर पुलिस इंस्पेक्टर नहीं है! यह देशभक्त भाइयों के साथ देश की आज़ादी पर मरनेवाला राज बहादुर है। मैं तुम्हारे साथ हूँ, देश की आज़ादी के लिए! भाइयों और बहनों की इज्जत के लिए! मैं राज बहादुर—देश की स्वतंत्रता में मेरा भी खून बहे। तुम नलिनी के साथ विवाह करो! मैं तुम्हारा काम पूरा करूंगा।

प्रकाश : देशभक्त बलिवेदी से विवाह करता है, स्त्री से नहीं। स्त्री तो उसकी शक्ति है, दुर्गा है!

नलिनी : शक्ति और दुर्गा! स्त्री तो जन्म से ही दुर्गा और शक्ति का अवतार है! देश की स्वतंत्रता में सब से प्रथम पंक्ति स्त्रियों की ही होगी। वे ही विजयगीत गाकर शत्रुओं के हाथों से देश की स्वतंत्रता छीन लेती हैं।

राज : तब चलो हम तीनों देश की स्वतंत्रता में अपने जीवन का सर्वस्व दान करें।

प्रकाश : राज बहादुर ! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ !

[श्यामनारायण का प्रवेश]

श्याम : नलिनी ! तुम कोमल होकर भी कठोर हो और राज बहादुर ! तुम कठोर होकर भी कोमल हो। और प्रकाश ! तुम कठोर और कोमल दोनों ही हो । आज हमारा यह रिहर्सल देश के सभी पुलिसवालों के लिए सच बन जाये ! जय हिन्द !

[परदा गिरता है ।]

आर्थिक दृष्टिकोण से —

कलाकार का सत्य

पात्र और परिस्थितियां

अखिल : एक महाकवि। इसने काव्य-साधना में अपने जीवन के अनेक वर्ष बिना किसी यश-लिप्सा के व्यतीत कर दिए हैं। अब, जब इसके पास कविता की अनेक पांडुलिपियाँ तैयार हो गई हैं तब वह अपनी ख्याति को सार्वजनिक रूप से देखने का अभिलाषी है, किंतु अभी तक ऐसी परिस्थिति नहीं आ सकी। इस परिस्थिति के अभाव में वह मर्माहत--सा है।

एकांत : अखिल का सहयोगी कवि है। वह अखिल के साथ ही रहता है। उसने काव्य-क्षेत्र में अभी प्रवेश ही किया है। वह सुलझा हुआ और समझदार है।

तुलसी : रामचरित मानस के रचयिता, हिंदी के महाकवि।

समय : रात के तीन बजे।

काल : आधुनिक समय का कोई भी दिन।

[एक गांव में कलोलिनी के तट पर अखिल की छोटी-सी कुटी। चारों ओर लताओं और फूलों के पौदे। उत्तर की ओर एक खिड़की जिससे उदय होता हुआ चंद्र-बिंब दीख रहा है। कुछ दूर पर कलोलिनी, जो अपने प्रवाह में सुख-दुख मयी रातें और बातें बहाती चली जा रही है। अखिल की उस छोटी-सी कुटी में एक कमरा है जो साफ और सुथरा होने के कारण अखिल की सुरुचि का प्रतिबिंब है। उस कमरे में तुलसीदास, सूरदास, कबीर, केशव और भूषण के चित्र लगे हुए हैं। एक ओर एक पुरानी अलमारी है जिसमें कुछ पुस्तकें सजी हुई हैं। दूसरे कोने में एक चारपाई है जिस पर आधी रात गए अखिल कविता-लिखते लिखते सो जाता है।

कमरे के बीचोबीच एक चटाई बिछी हुई है जिस पर एकांत [आयु २४ वर्ष] बैठा हुआ है। उसके सामने एक पुस्तक खुली हुई है। वह धोती और साधारण कुरता पहने हुए है। कमरे में अखिल [आयु ३० वर्ष] टहल रहा है। वह अशान्त है, इसलिए उसकी वेश-भूषा अस्तव्यस्त है। बाल बिखरे हुए। वह भी साधारण कुरता और धोती पहने हुए है। वह टहलते-टहलते बीच में रुक जाता है, जैसे किसी सधे हुए कंठ के स्वरालाप में खाँसी आ जाय। वह रुककर खिड़की से दीखनेवाले चंद्र-बिंब की ओर उद्विग्न होकर देखता है। उसी समय एकांत पुस्तक से दृष्टि उठा कर अखिल की ओर देखता है।]

एकांत : यह ' पुण्य-प्रदीप ' सचमुच तुम्हारा अमर-काव्य है, अखिल। [अखिल की ओर देखता है।] कल इसकी समालोचना करूँगा। अब सो जाओ महाकवि, बहुत रात बीत चुकी।

[अखिल मौन रह कर टहलता ही रहता है।]

एकांत : तुमने सुना नहीं, महाकवि ?

अखिल : [रुककर] यह सब किससे कह रहे हो, एकांत

एकांत : तुम से और किससे ? रात के तीन बजे और यहाँ है ही कौन ?

अखिल : [चित्रों की ओर संकेत करते हुए] ये तुलसी, ये सूर, ये कबीर।

एकांत : इनसे मेरा अभिप्राय नहीं है। महाकवि से मेरा अभिप्राय तुमसे है।

अखिल : मैं महाकवि? असंभव ! एकांत, महाकवि क्या इतना तिरस्कृत हो सकता है जितना मैं हुआ हूँ ? तुम शिशिर को वसंत नहीं कह सकते, फूल को लहर नहीं कह सकते, काँटे को फूल नहीं कह सकते। तुम मुझे महाकवि कहकर 'महाकवि' शब्द का अपमान कर रहे हो।

एकांत : शब्द कभी अपमानित नहीं होते, अखिल! हम अपनी भावनाओं को ही जोड़ कर उन्हें सम्मानित या अपमानित होता हुआ समझते हैं। तुम महाकवि हो। संसार आज नहीं तो कल तुम्हे महाकवि अवश्य घोषित करेगा। रत्न रत्न ही रहता है, चाहे वह राजा के मुकुट में हो, चाहे पृथ्वी के अंधकार में।

अखिल : किंतु पृथ्वी के अंधकार में उसका क्या मूल्य है ? अंधकार अपनी शून्यता में इतना काला है कि वह रत्न को कोयले से आगे नहीं बढ़ने देगा। श्मशान भूमि में राजा और रंक की तरह वह रत्न और कोयले को बराबर ही समझता है।

एकांत : किंतु रत्न को संतोष हो जाना चाहिए कि वह रत्न है।

अखिल : उस संतोष से लाभ? वन में खिलनेवाले फूल को अपनी सुंदरता का अभिमान क्यों हो जब तक कि वह किसी के केश-कलाप में सज कर या देवता के चरणों में समर्पित होकर दो क्षणों के लंबे युग में अपने को अमर न कर ले ? एकांत में खिलने वाले पुष्प से तो वे काँटे अच्छे हैं जो कोई स्वप्न नहीं देखते। अपनी वास्तविकता में सारे जीवन भर तीखी नोंक में अपनी चुभन लिए हुए जैसे आते है वैसे ही चले जाते हैं।

एकांत : किंतु अखिल, काँटे इसलिए नहीं बढ़ते कि वे किसी के पैर में

चुभकर दो आंसुओं का अपना कर वसूल करे और फूल इसलिए नहीं फूलते कि वे किसी के हार में गुँथकर किसी की आँखों को मौन निमंत्रण दें। फूल और काँटे अपने जीवन की पूर्णता में संतुष्ट हैं। वे संसार को अपनी दिशा में पुकारते नहीं हैं।

अखिल : क्या तुमने फूलों की पुकार नहीं सुनी? यह पुकार हमारी तुम्हारी पुकार नहीं है। यह पुकार आत्मा की है, अनुराग की है, अभिलाषा की है। इस पुकार में शब्द नहीं हैं। इस पुकार में निमंत्रण की विद्युत है जो बिना बादल के चमकती है। एक होकर सब दिशाओं में फैलती है और मार्ग में जो मिलता है उसकी आत्मा में बैठकर उसे अपनी जन्मभूमि तक ले आती है।

एकांत : अच्छा अखिल, अब तुम सो जाओ। बहुत रात हो गई। यह विवाद कल पर छोड़ो।

अखिल : तुम सोओ, एकांत, मुझे नींद नहीं आ रही है। मैं इसी तरह जागते हुए अपने जीवन पर आज सोचूँगा। मुझे एकाकी ही रहने दो। अपने नाम की सार्थकता मुझे दो।

एकांत : [किंचित मुस्कुराकर] वह तो तुम्हारे पास है ही। तुम्हारी सेवा में तो मेरा आत्म-समर्पण है ही, तुम्हीं मेरे पथ-प्रदर्शक हो किंतु इस समय मेरी प्रार्थना मानो। तुम सो जाओ, नहीं तो तुम्हारा स्वास्थ्य ख़राब हो जायगा। अखिल! इस तरह रात-रात भर जागोगे तो तुम अपनी साहित्य-साधना भी न कर सकोगे।

अखिल : अब मुझे साहित्य-साधना करनी भी नहीं है। जिसकी साहित्य-सेवा का संसार के सामने कुछ भी मूल्य न हो, उसकी चेष्टा उस चींटी की तरह है जो अपने जीवन में पृथ्वी की परिधि नापना चाहती है। मैं अपने सारे ग्रंथ जलाऊंगा। काग़ज में लिपटे हुए मेरे ज्ञान के शव! जैसे मेरी कुटी इनके लिए श्मशान भूमि है। इन्हें जलाऊंगा और कहूंगा कि ये सारे ग्रंथ अपने ही परिताप की आग में जल गए! [अग्निकुंड के समीप जाकर पुस्तकें निकालते हुए] यह कविता, यह नाटक,

यह उपन्यास ! छद्मवेशी साहित्य ! जो बहुरूपिया बनकर मनुष्य को धोखा देना चाहता है, उसकी हत्या...

एकांत : [उठकर और अखिल का हाथ पकड़कर] यह क्या कर रहे हो, अखिल ? पागल तो नहीं हो गए ?

अखिल : [उद्वेग से] हाँ, पागल ही हो गया हूँ ! मैं इन्हें जलाऊँगा और जब ये सारे ग्रंथ जलेंगे तो इनकी आग से दुनियाँ को और भी उजेला मिलेगा, इनके ज्ञान से न सही। भूत को वर्तमान बनाने वाले वे भूत मुझे नहीं चाहिएँ। काली स्याही में रँगा हुआ यह मस्तिष्क मुझे काफ़ी भ्रष्ट कर चुका। काग़ज़ की पुड़ियों में ज्ञान बाँधकर मैं प्रदर्शनी सजाना चाहता था ! नष्ट करो इसे एकांत ! आज तक मैं भूल में था।

एकांत : [अखिल का हाथ पकड़कर उसे झकझोरते हुए] अखिल, अखिल ! यह तुम क्या कह रहे हो ? दिन भर सोचते-सोचते तुम्हारा मन बहुत क्षुब्ध हो गया है। तुम अपने आपे में नहीं हो ! ज़रा धैर्य से काम लो ! शांति से विचार करो ! आओ, विश्राम करो ! [एकांत अखिल को चारपाई के पास ले जाता है।] देखो, तुमने काव्य के क्षेत्र में इतना परिश्रम किया, इतनी साधना की और उसका पुरस्कार तुम्हें नहीं मिला तो कोई हानि नहीं ! तुम अब भी महान् हो। तुम्हारी साधना का मूल्य अब भी वही है जो होना चाहिए। हज़ारों फूल खिलते हैं। सभी सुगंधि में एक दूसरे से बढ़कर हैं। लेकिन सभी फूल तो फल में परिणत नहीं होते। और यदि कोई फूल फल में परिणत नहीं होता तो उसकी सुगंधि में तो संदेह नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार यदि संसार ने तुम्हारा मूल्य न समझा हो तो तुम्हारी प्रतिभा में कैसे संदेह किया जा सकता है ? ज़रा तुम शांत होओ। विश्राम करो। तुम्हारा मन स्थिर हो जायगा।

अखिल : नहीं एकांत, मुझे नींद नहीं आएगी। [उठने की चेष्टा करता है, किंतु एकांत उसे रोक लेता है।]

एकांत : तुम रात-रात भर जागते हो। न जाने क्या सोचते रहते हो ? कभी ठीक तरह से खाना भी नहीं खाते। तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा कैसे रहेगा ? तुम ज़रा यों ही बिस्तर पर लेट रहो। नींद थोड़ी देर में आ जायगी। तुम सोने की चेष्टा तो करो !

अखिल : एकांत, मैं यहाँ रहूगा भी नहीं। यह स्थान छोड़ दूँगा और चला जाऊँगा, जहाँ मुझे शांति मिल सके। मैं इस स्थान पर रहते-रहते अब ऊब भी गया हूँ।

एकांत : अच्छा, अच्छा, चले जाना; पर इस समय तो विश्राम करो। अखिल मैं जानता हूँ कि साधना कठिन होती है और उसकी सफलता जब दूर होती है तो मन इसी तरह अशांत हो जाता है, किंतु साहस और धैर्य का भी तो महत्व है।

अखिल : साहस और धैर्य ! पिछले दस वर्षों से मैंने काव्य की उपासना की। 'पुण्य-प्रदीप' के लिखने में जीवन के बहुमूल्य सात वर्ष समाप्त किए, किंतु किसी ने मेरी कविता को सुनने की आजतक अभिलाषा प्रकट नहीं की। किसी को उसमें सरसता नहीं जान पड़ी, जिसके मूल्य में वे मुझे अपनी थोड़ी-सी सहानुभूति ही दे सकते। किसी ने उसका कोई गीत नहीं गाया। क्या तुम अनुमान कर सकते हो कि मुझे कितना आंतरिक क्लेश हुआ है ? मेरी सारी तपस्या आज निष्फल बनकर रह गई ! मैं ऐसे पथिक के समान हूँ जिसके भाग्य में चलना ही चलना है, गन्तव्य स्थान पर पहुँचना नहीं।

एकांत : किंतु निराश होने की कोई बात नहीं है। अखिल सफलता कभी परिश्रम से दूर नहीं रहती।

अखिल : दूर नहीं रहती ! पृथ्वी रात भर तपस्या करती है तो उसे उषा और प्रभात का वरदान मिलता है, किंतु मेरी तपस्या में रात का अंधकार ही अंधकार है। एकांत ! मेरे लिए परिश्रम और सफलता दो विरुद्ध दिशाओं की तरह सदैव दूर ही दूर रहेंगी।

एकांत : तो अखिल मैं इसे असत्य करूंगा। कल ही मैं 'पुण्य-प्रदीप' के

प्रकाशन के विषय में शहर जाकर किसी प्रकाशक से मिलूँगा।

अखिल : [तीव्रता से] मेरा फिर अपमान कराना है, एकांत ! पिछली बार जानते हो रंजन ने क्या कहा था ? 'तुम्हारी कविता प्रकाशित कर मैं अपने कार्यालय का महत्त्व नहीं घटाना चाहता।' मेरी पुस्तक से उनके कार्यालय का महत्व घटता है ! क्या इस अपमान को तुम दुहराना चाहते हो ?

एकांत : नहीं अखिल, प्रकाशकों की अहंमन्यता से कवि का महत्व कम नहीं होता। थोड़ी-सी पुस्तकें छाप लेने से प्रकाशक अपने को दूसरा ईश्वर समझ लेते हैं और समझते हैं कि इनकी सहायता के बिना अच्छे ग्रंथ छापे ही नहीं जा सकते। साहित्य इनसे पूछ ले तब वह पुस्तकों में प्रवेश करे ! कल्ी इनकी नजर देखे तब खिले ! ये प्रकाशक हैं या काँटों के झुरमुट, जो उगते हुए पौदों को बढ़ने से रोक देते हैं। किन्तु अब इन लोगों को रास्ते पर लाना होगा। इन्हें काटने-छाँटने की आवश्यकता होगी। मैं एक सामूहिक और सार्वजनिक आन्दोलन संगठित करूँगा। प्रसिद्धि-प्राप्त लेखकों और कवियों की सहानुभूति प्राप्तकर अलग प्रकाशन-मंदिर स्थापित करूँगा। तब ये प्रकाशक प्रकाश के शत्रुओं की भाँति देखते ही रह जायेंगे। तब देखूगा कि तुम्हारे ग्रंथ प्रकाशित होने से कैसे रह जाते हैं ? मैं इन प्रकाशकों की जड़ ही काट दूँगा। ये जंगल के झाड़ और झंखाड़ की तरह मनमाने नहीं बढ़ सकेंगे।

अखिल : मैं भी यही चाहता हूँ कि मेरे ग्रंथ के पीछे प्रकाशकों की कृपा का इतिहास न हो। [अलमारी की ओर संकेत करते हुए] ये सारे ग्रंथ रक्खे हैं ! इनके प्रकाशन का पर्दा फाड़कर झाको। देखोगे कि लेखक या कवि प्रकाशक महोदय के उपग्रह बने हुए घूम रहे हैं, और प्रकाशक सूर्य की तरह उठ कर कह रहे हैं-'अच्छा, अब मैं तुम्हारी कविता प्रकाशित करूँगा। यद्यपि तुम्हारी कविता की प्रतियाँ बिकेंगी नहीं, लेकिन मैं उन्हें बेचने की कोशिश करूँगा। हाँ, तुम्हें अपनी किताब भूमिका में

देनी पड़ेगी। यही क्या कम है कि मैं तुम्हारी किताब पर पैसे लगा रहा हूँ। इधर प्रकाशकजी ने उस पुस्तक पर हज़ारों रुपये कमाए और कविजी इसी में संतुष्ट हैं कि प्रकाशक महोदय ने उनकी पुस्तक छाप तो ली। इसीलिए मैं चाहता हूँ कि किसी तरह तुम इन लेखकों और कवियों का कलक जला दो और अहंवादी प्रकाशकों को उनके कल्पित मनोराज्य से निकाल दो। रुपये और दंभ में गले तक धँसे हुए ये प्रकाशक चाँद और सूरज से भी ऊपर हैं। ये कीचड़ में बिलबिलाते हुए कीड़े हैं जो गंदे पानी को पीकर कहते हैं कि कि समुद्र हमारे संकेत से ही घटता-बढ़ता है।

एकांत : किंतु अखिल, इन प्रकाशकों में भी कुछ प्रकाशक ऐसे अवश्य होंगे, जो केवल साहित्य-सेवा की प्रेरणा से ही प्रकाशन के क्षेत्र में आए हैं।

अखिल : किंतु ऐसे प्रकाशकों की संख्या कितनी है!

एकांत : मैं ऐसे प्रकाशकों की संख्या बढ़ाने में प्रयत्नशील होऊँगा। तुम्हारे ही समान मेरे अनेक कवि मित्र हैं। उनका सहयोग प्राप्तकर मैं इस कलंक को दूर करूँगा; किंतु तुम इसकी चिंता मत करो। अखिल, तुम्हारा यदि कोई प्रकाशक न भी हो, जो तुम्हारी साधना का उचित पुरस्कार देकर तुम्हें सम्मानित करे, तो कोई चिंता की बात नहीं। तुम्हारी रचनाएँ नक्षत्रों की तरह अपने आप प्रकाशित होंगी। महाकवि तुलसीदास ने रामचरित मानस के प्रकाशन के लिये क्या चेष्टा की थी; किंतु उनका मानस संसार के श्रेष्ठ महाकाव्यों में अपना अमर स्थान बना गया। दीपक अपने जलानेवाले से नहीं कहता कि मेरे चारों ओर का अंधकार दूर कर दो, दीपक की ज्योति ही अंधकार दूर करती है।

अखिल : तुम्हारे इस कथन से मुझे संतोष है, एकांत!

एकांत : फिर भी मैं तुम्हारे ग्रंथ के प्रकाशन की व्यवस्था कराने कल शहर अवश्य जाऊँगा। यदि तुम्हारी साधना का प्रकाश इसी समय से फैलने लगे तो क्या हानि है? तुम्हारा काव्यालोक भविष्य का सौंदर्य तो होगा

ही, यदि इसी समय से उसकी किरणें जनता के नेत्रों तक पहुँच जायँ तो इससे मानवता का उपकार ही होगा। मैं चाहता हूँ कि कल ही जाकर मैं एक प्रकाशक या रंजन से ही बातें करूँ।

अखिल : किंतु मैं रंजन की कृपा नहीं चाहता।

एकांत : मैं रंजन को कृपा करने का अवसर ही नहीं दूंगा। 'पुण्य-प्रदीप' के स्थलों को सुनाकर कहूँगा कि समाज को इस महाकाव्य की आवश्यकता है। संसार इस महाकाव्य से कर्मयोग का पाठ सीखेगा। मानवता अपने सुख-दुःख की वास्तविकता के चित्र इस महाकाव्य में देखेगी। और मैं तुम्हारी साधना का वास्तविक पुरस्कार उससे प्राप्त करूँगा। यों तो तुम्हारी साधना का मूल्य किसी भी द्रव्य से आँका नहीं जा सकता, फिर भी तुम्हारी आवश्यकताओं की पूर्ति तो होनी आवश्यक ही है।

अखिल : मैं इस संबंध में कुछ नहीं कह सकता।

एकांत : कल तुम अपने महाकाव्य की पाँडुलिपि मुझे दे दो। मैं उसे अपने साथ ही ले जाऊँगा।

अखिल : जैसा तुम उचित समझो, एकांत!

एकांत : मैं यही उचित समझता हूँ। यदि मेरा परिचय तुमसे कुछ पूर्व हो जाता तो अब तक तो तुम्हारी अनेक कृतियाँ प्रकाश में आ जातीं, किंतु अब भी कोई हानि नहीं।

अखिल : मुझे किसी बात की चिंता नहीं। मै तो यही समझता हूँ कि मैं अपना उत्तरदायित्व पूर्ण नहीं कर सका और मेरी समाज को आवश्यकता नहीं, संसार को आवश्यकता नहीं, मेरा जीवन व्यर्थ ही है!

एकांत : नहीं, महाकवि, तुम्हारा ऐसा सोचना ठीक नहीं। तुम साहित्य के महान कवि हो और संसार और समाज को तुम्हारी आवश्यकता है। और मैं यह भी कह सकता हूँ तुम भविष्य के हो और भविष्य तुम्हारा है। अच्छा, अब तुम सो जाओ। यदि मैं तुम्हारी चिंता न करूँ

तो तुम्हें कोई देखनेवाला ही नहीं। ठीक है महापुरुषों का जीवन इसी प्रकार होता है। इधर कई दिनों से मैं देख रहा हूँ कि तुम्हें नींद भी अच्छी तरह से नहीं आती। सोते-सोते चौंक उठते हो। स्वप्न में न जाने क्या-क्या देखा करते हो! कभी हँसते हो, कभी चीख उठते हो। कभी किसी से बातें करते हो, यह ठीक नहीं। तुम पूर्ण शांति से सोओ। मैं तो पास के कमरे में ही हूँ, जब चाहे मुझे बुला सकते हो।

अखिल : [स्वस्थ होकर] अच्छी बात है, तुम जाओ, एकांत! मैं सोने की कोशिश करूँगा। अपने थोड़े दिनों के जीवन में प्रसन्न रहने की चेष्टा करूँगा। अब मैं भी थक गया हूँ। शायद नींद आ जाय।

एकांत : यही तो मैं भी कहता हूँ, महाकवि। तुम सोने की कोशिश करोगे तो तुम्हें नींद अवश्य आ जायगी।

अखिल : अच्छी बात है। [दृढ़ मुद्रा]

एकांत : तो मैं जाऊँ?

अखिल : जाओ।

एकांत : रात के लिए नमस्कार। [अखिल धीरे से सिर हिलाता है।]

एकांत : [जाते-जाते] शांति से सोना, महाकवि! [प्रस्थान]

[एकांत के जाने के पश्चात् अखिल थोड़ी देरतक चारपाई पर बैठा रहता है। फिर सोचते-सोचते उठ खड़ा होता है और कमरे में टहलने लगता है।]

अखिल : [टहलते हुए शांति से] सोऊँ?...जिसके जागने में शांति नहीं है, उसके सोने में शांति होगी?...क्या शांति होगी? एकांत क्या समझे कि मैं किसलिए चिंतित हूँ...इसलिए नहीं कि मेरी रचनाएँ प्रकाशित नहीं हुईं, इसलिए कि मैं समझ रहा हूँ कि वर्तमान युग में मेरी साधना का कोई मूल्य नहीं और मुझे यह साधना छोड़नी होगी...। यह घर भी छोड़ना होगा...। यह प्यारा घर! जिसकी प्रत्येक दीवाल से मेरा सहोदर जैसा संबंध है, जिसकी प्रत्येक लता मेरी सहोदरी है। बड़ा न होते हुए भी इसने मुझे बड़ा किया है।

इसकी धूल ने मुझे शक्ति प्रदान की है। अब यह एकाकी रह जायगा। [टहलते हुए खिडकी के पास जाता है।] कल्लोलिनी, मेरे सुख-दुःख को बहाकर मेरी स्मृति भी बहा ले जाना, जिससे संसार को यह न मालूम हो कि अखिल नाम का कोई व्यक्ति इस संसार में असफल साधना लेकर उत्पन्न हुआ था। यही मेरे जीवन का परिणाम है और यही होना भी चाहिए।...[फिर टहलता है।] एकांत कहता है कि वह मेरे 'पुण्य-प्रदीप' की पांडुलिपि कल ले जायगा। क्या होगा उससे ? किसी ने कृपा-पूर्वक नहीं—नहीं कृपा-पूर्वक किसी को छापने न दूँगा ! मेरी साधना में किसी की कृपा के लिए स्थान नहीं है...अब सोने की चेष्टा करूँ...! नींद नहीं आएगी। [चांद की ओर दृष्टि डालकर] चाँद! मेरे समान इसके हृदय में भी शोक की कालिमा है...! लेकिन मेरे चले जाने के बाद मेरे घर पर चाँदनी का अमृत बरसाकर उसे अधिक दिनों तक सुरक्षित रखना...! [लौटकर चारपाई पर बैठता है। उसकी दृष्टि महात्मा तुलसीदास के चित्र पर पड़ती है। वह तुलसीदास के चित्र के समीप जाता है।] तुलसीदास, रामचरित मानस के महाकवि तुलसी...! एकांत कहता है—महाकवि तुलसी ने रामचरित मानस के प्रकाशन के लिए क्या चेष्टा की थी...! [रुक कर] क्या चेष्टा की होगी ? कुछ नहीं ! [तुलसीदास के चित्र की ओर ध्यान से देखता है]...अच्छा महाकवि...तुम महाकवि ही होकर रहे...तुम अमर हो...[लौटकर आकर चारपाई पर बैठता है। कुछ क्षण बैठने के बाद] अब सोऊँ ? आलस आ रहा है। [जभाई लेता है। उठकर कमरे का प्रकाश मंद करता है और पलंग पर अंगड़ाई लेकर बैठता है। एक क्षण सोचते हुए] संभव है, इस घर में मेरी यह अंतिम रात हो! [हंस कर] भाग्य का विधान !

[धीरे-धीरे चादर ओढ कर लेट जाता है। एक मिनट तक स्तब्धता रहती है। फिर 'बैक ग्राउंड म्यूज़िक'। कुछ देर बाद अखिल करवट बदलता है। अब वह सो गया है। एकाएक हरा प्रकाश होता है, जो नेपथ्य से आता हुआ ज्ञात होता है। उसी के साथ दूर से आती हुई संगीत की ध्वनि सुनाई दे रही है। धीरे-

धीरे वह ध्वनि पास आकर स्पष्ट सुन पड़ती है।]

कबहुँक हौं यहि रहनि रहोंगो।
श्री रघुनाथ कृपालु कृपा ते संत सुभाव गहोंगो॥
जथा लाभ संतोष सदा काहू सों कछु न चहोंगो।
पर हित निरत निरंतर मन क्रम वचन नेम निवहोंगो॥
परुष वचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहोंगो।
विगत मान, सम सीतल मन पर गुन नहिं दोष कहोंगो॥
परिहरि देह जनित चिन्ता दुख सुख सम बुद्धि सहोंगो।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि अविचल हरि भक्ति लहोंगो॥
कबहुंक...हौं...यहि...रहनि...रहोंगो...।

[कुछ देर शान्ति]

अखिल : [निद्रित स्वर में] तुलसीदास...

[एक वृद्ध व्यक्ति प्रवेश करता है। दुर्बल शरीर। गौर वर्ण। बड़े बड़े बाल, माथे में तिलक। हाथ में माला। पैर में खड़ाऊं। स्वच्छ वस्त्र। वह पूर्ण तपस्वी वेश में है। वह अपने विशाल नेत्रों से अखिल को देखता हुआ चारपाई के समीप आ जाता है, अखिल नेत्र बन्द किए हुए इस व्यक्ति को ही स्वप्न में देख रहा है।]

अखिल : [आंख बंद किए हुए] तु...ल...सी...

तुलसी : [भावना के स्वरों में]

एक भरोसे एक बल,
एक आस विस्वास—
एक राम घनस्याम हित,
चातक तुलसीदास।

अखिल : [निद्रिस्त स्वर में] तु...ल...सी...!

तुलसी : [सान्त्वना के स्वर में] तुम दुखी हो अखिल ? दुखी होने की कोई बात नहीं। मैं भी तो तुम्हारी ही तरह था। मंगन के कुल में जन्म लिया। माता पिता ने छोड़ दिया। जाति के, कुजाति में, सुजाति

के टुकड़े खाए। छुटपन से ही द्वार-द्वार पर दीनता कही। स्वार्थ के साथियों ने तिजरा के टोटके के समान मुझे पीछे पलट कर भी नहीं देखा। मैंने भिक्षा मांगी। चार चनों को ही चार पदार्थ अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष की भाँति मैंने जाना। किंतु मैंने इन सब विपत्तियों का तिरस्कार किया। लोगों ने मुझे पोच कहा, इसका न तो मुझे कभी सोच हुआ और न संकोच ही। मुझे विवाह की चिंता भी नहीं थी। मैं किसी की जाति-पाँति नहीं चाहता था। भागीरथी का—कल्लोलनी का-जलपान और अपने राम का नाम। बस, यही चाहता था। काशी में लोगों ने मुझे शारीरिक दंड भी दिया, किंतु मैंने कुछ नहीं किया। रामचरित मानस की रचना की। पंडितों ने विरोध किया-मैं राम कथा को भाषा में लिखता हूँ, किंतु मैंने निर्भीकता से अपनी निन्दा सुनी।

'कौन की आस करे तुलसी जो
पै राखि है राम तौ मारि है को रे।'

अखिल : [चारपाई पर उद्विग्न होकर] रक्षा...रक्षा !

तुलसी : [पुनः सांत्वना के स्वर में] अपने पर विश्वास रक्खो, तुम स्वयं अपनी रक्षा कर लोगे। ईश्वर की शक्ति में श्रद्धा रक्खो।

राखि है राम कृपालु तहाँ हनुमान से पायक है जेहि केरे।
नाक रसातल भूतल में रघुनायक एक सहायक मेरे॥

तुम इतने दुखी क्यों होते हो ? माता-पिता से हीन दुखी भिखारी मैं जब निंदित होकर लोगों से पूजित हुआ तो तुम क्यों नहीं हो सकते ? तुमने वे पंक्तियाँ पढ़ी हैं ?

केहि गिनती महँ गिनती जस बन घास।
नाम जपत भये तुलसी तुलसीदास॥

और

घर घर माँगे टूक पुनि भूपति पूजे पाय।
जे तुलसी तब राम बिनु ते अब राम सहाय॥

उठो, तुम प्रसिद्ध होगे। अपनी साधना में और अपने राम में विश्वास हो। [अखिल के अधरों में स्पंदन होता है।]

तुलसी : मैं जानता हूँ तुम अपनी कविता के संबंध में कह रहे हो। यदि तुम्हारी कविता प्रकाशित न भी हो तो उसका मूल्य नहीं घटता। रत्न रत्न ही है, चाहे जहाँ हो। हाँ, वह नृप के किरीट और तरुणी के शरीर पर जाकर अधिक शोभा प्राप्त करता है। तुम भी शोभा प्राप्त करोगे। मेरी कविता कहीं प्रकाशित नहीं हुई। रामचरितमानस की मेरे समकालीन लोगों ने निंदा ही की, किंतु राम-भक्ति में लिखे गए मानस को कोई रोक नहीं सका। सच्चा मनुष्य वह है जो निंदा से निराश नहीं होता। अच्छा, [चलते हुए] अब मैं जाता हूँ।

एक भरोसो एक बल एक आस विस्वास।
एक राम घनस्याम हित चातक तुलसीदास ॥ [प्रस्थान।]

[नेपथ्य में उनका वही स्वर सुन पड़ता है। 'कबहुंक हौं यहि रहनि रहौंगो उनके जाते ही हरा प्रकाश नेपथ्य में जाता हुआ लीन हो जाता है। धीरे-धीरे उनका गान दूर होता हुआ क्षीण होता जा रहा है, और कुछ देर में वह वायु में लीन हो जाता है।]

अखिल : [एकाएक चौंककर उठते हुए] तुलसीदास...महाकवि तुलसी... तुल...सी...! [उठकर शीघ्रता से दरवाजे के पास जाता है। फिर लौटते हुए] यह स्वप्न है या सत्य? तुलसीदास...[महात्मा तुलसीदास के चित्र के समीप खड़ा हो जाता है। धीरे-धीरे दुहराता हुआ] यह स्वप्न...था... या सत्य...?

[एकांत का शीघ्रता से प्रवेश।]

एकांत : [अखिल को खड़ा देखकर] अखिल, तुम नींद में फिर चौंक उठे?

अखिल : [एकांत से कुछ न बोलकर तुलसी के चित्र को देखते हुए पूर्ववत् शिथिल स्वर में] तु...लसी...

एकांत : तु..लसी! बात क्या है?

अखिल : [शून्य में देखकर] अभी तुलसीदास आए थे।

एकांत : [आश्चर्य से] तुलसीदास ?

अखिल : हाँ, हाँ, तुलसीदास ! अभी आए थे। और मैंने जीवन का सत्य पा लिया, एकांत ! मैंने जीवन का सत्य पा लिया ! अब मुझे कुछ नहीं चाहिए। तुम जाओ एकांत, अब मुझे कुछ नहीं चाहिए ! मुझे खोया हुआ रास्ता मिल गया ! मुझे जीवन का संदेश मिल गया ! तुम जाओ एकांत ! तुम जाओ !

एकांत : [अस्थिर होकर] तुम बहुत अशान्त रहते हो अखिल, न जाने क्या-क्या स्वप्न में देखते हो ? तुम बीमार पड़ जाओगे।

अखिल : कुछ नहीं, एकांत। अभी तुलसीदास आए थे। बिल्कुल सामने। मैंने उनके विशाल नेत्र देखे। उनके बड़े-बड़े बाल थे। माथे में तिलक, हाथ में माला, पैर में खड़ाऊं, स्वच्छ वस्त्र। पूर्ण तपस्वी का वेश। ओह बिल्कुल साकार ! वे मेरी चारपाई के पास चले आए। उन्होंने मुझसे कहा—'जब मैं निन्दित होकर लोगों से पूजित हुआ तो तुम क्यों नहीं हो सकते ? तुम अपनी साधना में विश्वास रक्खो।' तुमने भी तो मुझ से यही कहा था, लेकिन मुझे विश्वास नहीं हुआ। एकांत, एकांत, आज मैं बहुत प्रसन्न हूँ। अब मैं कुछ नहीं चाहता, आज म कुछ नहीं चाहता !

एकांत : [अखिल का हाथ पकड़कर] अखिल, जरा शान्त होओ ! क्या तुलसीदास को तुमने स्वप्न में देखा ?

अखिल : स्वप्न में ? लेकिन उनका आना उतना ही सत्य है जितना तुम्हारा। एकांत, अब मुझे रास्ता मिल गया, मुझे रास्ता मिल गया ! तुलसीदास ने बतला दिया, महाकवि ने !

एकांत : कैसा रास्ता ?

अखिल : जिसमें कभी कोई निराशा नहीं, कभी कोई दुःख नहीं, कभी कोई ग्लानि नहीं !

एकांत : कुछ स्पष्ट कहो, अखिल !

अखिल : स्पष्ट कहने की आवश्यकता नहीं ! देखो एकांत, मेरा 'पुण्य-प्रदीप' कहाँ है ?

एकांत : वहीं, तुम्हारी अल्मारी में। [आल्मारी के पास जाता है।]

अखिल : उसे मुझे दे दो।

[अखिल निकालकर देता है।]

अखिल : लाओ, इसे मुझे दे दो। इसे प्रकाशित कराने की आवश्यकता नहीं है। तुम कहीं मत जाओ। किसी से इसे प्रकाशित करने की बात मत कहो। यह मेरे पास ही सुरक्षित रहेगा। अब मैं इसे किसी को नहीं दूँगा।

एकांत : और तुम जाओगे तो नहीं यहाँ से ?

अखिल : अब किसके पास जाऊँगा ? यहीं मुझे शांति मिलेगी। केवल यहीं शांति मिलेगी, जहाँ महात्मा तुलसीदास ने आकर मुझे शक्ति का मंत्र दिया है ! जीवन का अमर मंत्र दिया है। एकांत ! इस भूमि की पूजा करो, यह भूमि महात्मा तुलसीदास के पावन-चरणों से पवित्र हुई है। तुम इसे प्रणाम करो, एकांत ! महात्मा तुलसी के पवित्र शब्द हैं :

'एक भरोसो एक बल एक आस विस्वास'

[एकांत दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करता है और गिरते हुए परदे में कविता की पूर्ति होती है।]

'एक राम घनस्याम हित चातक तुलसीदास।'

[परदा गिर जाता है।]

सामाजिक दृष्टिकोण से—

फ़ेल्ट हैट

पात्र परिचय—

आनन्द मोहन : आयु ४० वर्ष, गृहस्वामी
शीला : आयु ३५ वर्ष, गृहस्वामिनी
अविनाश : आयु १८ वर्ष, आनन्द मोहन का भतीजा
शंभू : आयु २५ वर्ष, अविनाश का नौकर
मनकू : आयु ५० वर्ष, खोमचे वाला

स्थान : हमारे देश का कोई भी नगर

समय : संध्या समय, साढ़े पांच बजे

[एक सुसज्जित ड्राइंग रूम। कुर्सियां ढंग से रक्खी हुई हैं। कुर्सियों के बीचो-बीच एक छोटी-सी टेबिल है, जिस पर एक टेबिल-क्लॉथ पड़ा हुआ है। कमरे में एक क्लॉक है, जिसमें ६ बजने में १० मिनट बाकी हैं।

परदा उठने पर आनन्द मोहन अशांत चित्त से कमरे में टहल रहे हैं। यद्यपि वे चालीस वर्ष के हैं तथापि उनका शरीर स्वस्थ और सुन्दर है। ऐसा ज्ञात होता है कि वे यौवन की अंतिम सीढ़ी पर चढ़कर पीछे की ओर देख रहे हैं। अभी उनके जीवन से अन्यमनस्कता काफी दूर है। वे हल्के बादामी रंग का सूट पहने हुए हैं। पैरों में पॉलिश से चमकता हुआ ब्राउन 'शू' है। सफेद कमीज़ के ऊपर गहरे चाकलेट रंग की टाई उभर कर उनके वेश-विन्यास की सजीवता चारों ओर बिखेर रही है। टहलते हुए वे बाईं ओर प्रायः देख लिया करते हैं। शब्दों पर जोर देकर वे बाईं ओर देखते हुए आवाज़ देते हैं।]

......मिला या नहीं ?

[एक क्षण शांति रहती है, फिर बाईं ओर के नेपथ्य से कोमल ध्वनि में नारी के कंठ से उत्तर आता है।]

......नहीं !......

आनन्द : [किंचित झुंझलाकर] क्यों मिलेगा ! [घड़ी की ओर देखकर] छः बज रहे हैं और अभी तक नहीं मिला ! अजीब परेशानी है ! [फिर कुछ जोर के स्वर में] सोने के कमरे में देखो...[फिर टहलने लगते हैं। कुछ रुक कर] मिला ? नहीं मिला।

[एक क्षण बाद उसी ओर के नेपथ्य से]

आनन्द : [अस्थिर होकर] कौन शैतान उसे खा गया ! जब मैं कहीं

जाने के लिए तैयार होता हूँ, तभी ग़ायब। मुझे घर में इतनी लापरवाही अच्छी नहीं मालूम देती। चाहे मेरे पचास काम रुक जायँ लेकिन घर की रफ़्तार में कोई फ़र्क़ नहीं आएगा। [रुक कर] वहाँ देखो बाथ-रूम में। लेकिन वहाँ क्या होगा! [फिर टहलने लगते हैं।] यहाँ मुझे जाने की जल्दी है, वहाँ घर का कोना-कोना चोर बना हुआ है। यह घर क्या है, मेरी तक़लीफ़ों का कारख़ाना है, जिसमें रोज़ नई मुसीबत गढ़-छील कर मेरे लिए निकाली जाती है। [झुंझला कर] आफ़त है...! मौत है ...!! [नेपथ्य की ओर देख कर] वहाँ मिला बाथ-रूम में ?

[नेपथ्य में रुआसे स्वर से] मैं क्या करूं ? मुझे मिलता ही नहीं।

आनन्द : [अभिनय-सा करते हुए] तो सारे घर में आग लगा दो। देखता हूँ, इस मकान में मैं आराम से नहीं रह पाऊँगा। किसी तरह भले आदमी की इज़्ज़त बनाए हुए हूँ, वह भी मिट्टी में मिल जायगी। आज यह ग़ायब, कल वह ग़ायब। इस तरह ग़ायब होने का सिलसिला रहा तो मेरी ज़िन्दगी ही कहीं ग़ायब न हो जाय...!

[शीला का प्रवेश। ३५ वर्ष की आयु में भी वह आकर्षक है। हल्की नीली साड़ी में उसका गौर वर्ण आकाश में चाँदनी की तरह खिला हुआ है। उत्तर-दायित्व की गम्भीरता में वह जीवन की विनोदप्रियता बादल में रजत रेखा की भाँति सजाए हुए है। वह कुछ झुंझलाहट की संकुचित भौंहों के नीचे परिहास की स्मिति सावधानी से छिपाये हुए है। कृत्रिम क्रोध की भंगिमा में नीची दृष्टि किए हुए आत्मीयता के इठलाते शब्दों में कहती है :]

मैं क्या करूं ! मुझे तो मिलता ही नहीं। [कमरे में चारों ओर खोजने की दृष्टि डालती है।]

आनन्द : [रुष्ट होकर] तो सारे घर में आग लगा दो।

शीला : आग लगाने से तो वह मिलेगा नहीं। और लोग क्या कहेंगे कि एक छोटी-सी चीज के पीछे सारा घर जला दिया।

आनन्द : तो फिर तुम चाहती क्या हो ? यह घर सराय बना रहे ? मैं

खुद अपने घर में अजनबी बन जाऊँ ? अपनी ही चीज़ों के पीछे घंटों परेशान होऊँ ? और तुम मामूली ढंग से आकर कह दो, मैं क्या करूँ!

शीला : [परेशानी से] तो बतलाइए, मैं क्या करूँ ?

आनन्द : वह करो जिससे मैं घर से निकल जाऊँ।

शीला : उससे मुझे क्या मिल जायगा ?

आनन्द : आराम ! [आँखें फाड़कर] ज़िन्दगी भर के लिए आराम ! जब तक मैं हूँ तब तक मुझे परेशानी और तुम्हें भी परेशानी।

शीला : मैं तो परेशानी दूर करने की ही कोशिश करती हूँ और बतलाइए, मैं क्या करूँ?

आनन्द : उफ़ओह, अब यह भी मैं बतलाऊँ कि तुम क्या करो ! एक आदमी शादी किसलिए करता है ? इसलिए कि घर का इंतज़ाम ठीक रहे। सब चीज़ें आसानी से वक्त पर मिल जायँ, घर यतीमख़ाना न बने, नहीं तो ईंट, पत्थर, चूना किसे अच्छा लगता है ? मैं बाहर का काम करूँ, तुम अन्दर काम करो। 'डिवीज़न ऑव् लेबर,' लेकिन मालूम होता है कि घसियारे की तरह मैं ही घास काटूँ और मैं ही उसे बेचूँ-ख़ैर बेचूँगा।

शीला : देखिए, आप तो नाराज़ हो गए ! मैं माफ़ी माँगती हूँ। मैं अभी खोज देती हूँ। आप शान्त हो जायँ, सोचिए ज़रा, आप नाराज़ होकर बाहर जायँगे तो देखनेवाले आपको क्या कहेंगे ? आप बैठ जाइए कुर्सी पर, मैं खोज देती हूँ।

[शीला आनन्द को कुर्सी पर बिठलाती है। आनन्द अन्यमनस्कता से बैठते हैं।]

आनन्द : [कुर्सी पर बैठते हुए] अच्छी बात है। देखता हूँ, कैसे खोजती हो।

[शीला कुर्सी के आगे-पीछे खोजती है।]

आनन्द : [हाथ पर सिर टेककर] इतना सुन्दर फ़ेल्ट हैट लाया था ! चार

रोज़ भी नहीं लगा पाया ! [चौंक कर] अरे हाँ, उसमें तुमने आलू तो नहीं रख दिए ? सामान के कमरे में जाकर देखो।

शीला : [खोजते-खोजते रुककर रुक्षता से] आप मुझे समझते क्या हैं ?

आनन्द : क्या बतलाऊँ, क्या समझता हूँ ? अभी पिछले हफ़्ते ही तो तुमने मेरे पुराने हैट में आलू रक्खे थे।

शीला : मैंने रक्खे थे, या तुम्हारे भतीजे अविनाश के नौकर शंभू ने ?

आनन्द : यह तो तुम कहोगी ही। लेकिन मैं यह पूछता हूँ कि क्या फ़ेल्ट हैट भी आज चुकन्दर रखने की चीज़ है ?

शीला : यह शंभू से पूछिए, जिसने आलू रक्खे थे। आपको तो मुझपर विश्वास ही नहीं होता। क्या मैं इतनी नासमझ हूँ कि आपके फ़ेल्ट हैट में आलू रक्खूँ ? क़ुसूर करे नौकर, और झिड़की सहूँ मैं।

आनन्द : अच्छी बात है, मान लेता हूँ कि शंभू ने ही उसमें आलू रक्खे थे, लेकिन फिर उसे मोची के सिपुर्द किसने किया ? तुमने, या शंभू ने ? कह दो शंभू ने।

शीला : शंभू ने क्यों, मैंने दे दिया मोची को। बरसों का पुराना हैट, दस जगह धब्बे !

आनन्द : आलुओं के रखने से धब्बे न पड़ेंगे तो क्या उसमें चार चांद लग जायंगे ?

शीला : चार चांद के लायक़ था ही नहीं वह हैट। इतना मैला कुचैला ! उस रोज़ शंभू आया था, मैं काम में लगी थी। उसने आलुओं को ज़मीन में पड़े देखा, चुपक से आपके हैट में सजाकर रख दिए।

आनन्द : [व्यंग से] सजाकर रख दिए ! उन पर चांदी का वर्क़ भी नहीं चढ़ा दिया ?

शीला : शंभू से कहिए, आया तो हुआ है। कहिए भेज दूँ उसे आपके पास।

आनन्द : मेरे पास किसी को भेजने की ज़रूरत नहीं, मैं तो यही कहता

हूँ, और बार-बार यही कहता हूँ कि अगर मेरा नया हैट मिल जाय तो उसमें फिर कभी आलू न सजाये जायँ। म भला आदमी हूँ, मेरे हैट में आलू नहीं रहेंगे।

शीला : यह भी नौकर से कह दीजिए। मैं तो मूर्ख हूँ, नालायक़ हूँ।

[गला भर आता है।]

आनन्द : [कुर्सी से उठकर] उफ़ओह ! तुम बुरा मान गईं !

शीला : नहीं, नहीं। मैं मूर्ख हूँ, नालायक़ [आँखों से एक आँसू]

आनन्द : [पास आकर] अरे अरे, यह क्या तमाशा है ! कोई देखेगा तो क्या कहेगा ? मुझे बहुत दुःख है कि मेरे कहने से तुम्हारे दिल को चोट पहुँची। लेकिन क्या करूँ, मेरा स्वभाव ही कुछ ऐसा-वैसा हो गया है। मुझे माफ़ कर दो। हँसो, ज़रा हँसो !

शीला : मुझ से मत बोलिए।

आनन्द : तुम्हें मेरी क़सम, शीला ! तुम्हें मेरी क़सम, अगर न हँसो तो।

[शीला आंसू पोंछते हुए कुछ मुस्कुरा देती है।]

आनन्द : शाबास ! तुम बहुत अच्छी हो !

शीला : क्या अच्छी हूँ, हमेशा तो बुरा कहते रहते हैं।

आनन्द : नहीं, तुम मेरे कहने का मतलब नहीं समझीं। तुम भला मेरे हैट में आलू रख सकती हो ? तुम ? इतनी अच्छी शीला ! तुम ?

शीला : आप ही तो कहते हैं।

आनन्द : नहीं, मैं तुमसे नहीं कहता, तुमसे नहीं कहता। मैं तो यह कहता हूं...यानी मेरे कहने का मतलब यह है कि तुम नहीं समझीं।

शीला : हां, हां, आप कहिए तो...

आनन्द : यानी मेरे कहने का मतलब यही है कि अगर नौकर मेरे हैट में आलू रखने की शुभ कामना करे, यानी रखे तो...

शीला : तो...तो क्या ?

आनन्द : तो [सोचकर] तो शीघ्रता से] उस पर 'डायरेक्ट ऐक्शन' लिया जाय।

शीला : 'डायरेक्ट ऐक्शन' क्या ?

आनन्द : उफ़ओह ! अब 'डायरेक्ट ऐक्शन' का मतलब समझाऊँ ? सारी दुनियां 'डायरेक्ट ऐक्शन' का मतलब समझती है और तुम नहीं समझतीं।

शीला : मैं आपके मुँह से सुनना चाहती हूँ।

आनन्द : अरे भाई, 'सिविल डिसओबीडियन्स' जानती हो ?

शीला : अच्छा मान लीजिए, जानती हूँ।

आनन्द : तो 'डायरेक्ट ऐक्शन' उसी का भाई है, यानी बड़ा भाई है।

शीला : तो फिर शंभू पर कैसा 'डायरेक्ट ऐक्शन' लिया जाय ?

आनन्द : अच्छा, बाबा। किसी तरह न लो। जाने दो उस पुराने हैट की बात। अब तो सवाल नये हैट का है। उसे कहाँ से पाऊँ ? पुराना तो मोची के हाथ चला गया, नया न जाने किसके हाथ लगा होगा ?

शीला : आप बार-बार पुराने हैट का गुण गाते हैं। वह था ही किस काम का ? हीरे-मोती तो उसमें टँके नहीं थे ! और ऐसे धब्बोंवाला हैट आप लगाते तो आपके एटीकेट में फ़र्क़ न आता ? मैंने उसे मोची को देकर आपकी इज़्ज़त बचाई। मोची से कुछ पैसे वसूल किए और आपको अब भी मलाल है !

आनन्द : मुझे मलाल क्या है...! लेकिन बहुत अच्छा किया, मेरी इज़्ज़त बची रह गई। मैंने तो यह समझा था कि तुमने मोची को इसलिए दे दिया है कि वह चमड़ा-चमड़ा लगाकर फिर मेरे सिर को दुरुस्त कर दे, लेकिन ठीक है ! पैसों से ही ख़ैर रही।

शीला : आप हर एक बात को बुरे अर्थ में लेते हैं।

आनन्द : मैं बुरे अर्थ में नहीं लेता शीला ! मैं तो मामूली-सी बात कह रहा हूँ और नई चीज़ के खो जाने का सदमा किसे नहीं होता ?

शीला : मुझे इस बात का बहुत दुःख है। मैं आपके सामने ही उसे खोज देती, लेकिन अभी तो आपको जाना है।

आनन्द : लेकिन अब बग़ैर हैट के मैं कहीं जाऊँगा नहीं।

शीला : [मचलते हुए] देखिए इस वक़्त कहाँ खोजूँ, वह तो मिलता ही नहीं।

आनन्द : मैं कुछ नहीं जानता, तुम जानो।

शीला : आप उसे कहीं भूल तो नहीं आए ?

आनन्द : [दृढ़ता से] मैं चाहे अपना सिर कहीं भूल जाऊँ, लेकिन इतना अच्छा हैट नहीं भूल सकता और फिर उसे अभी तीन, चार रोज़ हुए-लाया था। इतना सुंदर हैट ! कितना बढ़िया रेशम का फ़ीता लगा हुआ था उसमें ! लेकिन इससे तुम क्या समझो...स्त्री क्या समझे कि हैट में क्या 'चार्म' रहता है। एक बैरागी को कोई क्या समझाए कि ताजमहल क्या चीज़ है !

शीला : [मुस्कुराकर] तो आपका यह ताजमहल किसी दूकान में फिर से नहीं मिल सकता ?

आनन्द : [तीव्रता से] मुझ से मज़ाक भी करती हो और माफ़ी भी मांगती हो ! यहाँ मेरा हैट खो गया है और तुम्हें मज़ाक़ सूझ रहा है।

शीला : आपने ही तो ताजमहल की बात कही और दोष मुझे दे रहे हैं। मैं तो कह रही थी कि दूसरा नया हैट भी तो ख़रीदा जा सकता है।

आनन्द : अब हैं कहां दूकान में और हैट...? दो ही हैट बचे थे। वह मैं ले आया। एक अपने लिए और दूसरा अविनाश के लिए। एक ही रंग और एक ही साइज़ के थे।

शीला : अविनाश के लिए फिर कभी ले आते। या फिर कोई दूसरा हल्का ले आते। अभी दोनों हैट आपके काम आते।

आनन्द : जो दूसरों के बच्चों की ज़िम्मेदारी लेता है, वही जानता है।

अपने हैट से हलका हैट लाता तो उसमें भी बुराई थी। जैसा हैट मेरा हो, वैसा ही हैट उसका भी हो। जो रंग मेरे हैट का हो, वही रंग उसके हैट का भी हो, नहीं तो अविनाश के पिता श्यामकिशोर कहेंगे कि मेरे लड़के को ग़ैर समझा। [लापरवाही से] ख़ैर, कोई बात नहीं। मेरे भाग्य में नया हैट लगाना लिखा ही नहीं था। इसके लिये कोई क्या करे? क्या तुम करो और क्या अविनाश? भाग्य में ही लिखा था कि मेरे हैट के बारे में तुमसे लापरवाही हो जाय, मेरी चीज़ों से नफ़रत हो जाय!

शीला : आप तो मुझे ख़ामख़ां दोष देते हैं।

आनन्द : मैं दोष नहीं देता, शीला! लेकिन मैं तुमसे आख़िरी बार कहे देता हूँ, तुम्हें मुझसे भले ही नफ़रत हो, लेकिन मेरी चीज़ों से, मेरे कपड़ों से, मेरे हैट से तुम्हें नफ़रत नहीं करनी होगी। मुझसे नफ़रत करने में पैसों का सवाल नहीं है, लेकिन मेरी चीज़ों से नफ़रत करने में पसों का सवाल है।

शीला : लेकिन मुझे तो किसी से नफ़रत नहीं है। न आप से, न आपकी चीज़ों से।

आनन्द : [शीघ्रता से] तो फिर इसका क्या मतलब है कि इस तरह मेरा हैट खो जाय!

शीला : हैट खो नहीं सकता, कहीं न कहीं मिल ही जायगा। उसे ढूंढ़ ही लेंगे कहीं न कहीं। जायगा कहाँ, मिल जायगा।

आनन्द : लेकिन कब? मुझे मिस्टर ब्राउन के यहां जाना है, साढे छः बजे। वे मेरा रास्ता देख रहे होंगे। यहाँ हैट ही ग़ायब है।

शीला : तो अभी बग़ैर हैट के ही चले जाइए।

आनन्द : [घूरकर] जी, जैसे मैं एटीकेट जानता ही नहीं। किसी हिन्दुस्तानी से मिलना होता तो बात दूसरी थी, किन्तु मिस्टर ब्राउन हैं पूरे ऐंग्लो इंडियन। उनके सामने एटीकेट हर चीज़ में बरतना पड़ता है। वे भी तो बिल्कुल 'टिपटॉप' रहते हैं। वे क्या कहेंगे कि मैं बिना हैट के ही उनके पास चला गया, जैसे मेरे पास हैट ही नहीं है!

शीला : कह दीजिएगा कि जल्दी में हैट घर पर ही रह गया। कल मिल जाने पर उन्हें दिखला दीजियगा कि मेरे पास भी नया फ़ेल्ट हैट है! न मिले तो अविनाश का लेते जाइएगा। मैं अविनाश से कहकर उसका हैट ले लूँगी।

आनन्द : [मुस्कुराकर] तुम भी बिल्कुल हिन्दुस्तानी बातचीत करती हो। मिस्टर ब्राउन से यह सब कहने की जरूरत ही क्या है? हैट नहीं है, तो नहीं है।

शीला : तो फिर आप इतने परेशान क्यों होते हैं और फिर? [मुस्कुरा कर] आप बिना हैट के भी तो इतने अच्छे लगते हैं कि.....

आनन्द : [हँसकर] अच्छा, यह बात है! जाओ, अब मैं मिस्टर ब्राउन के यहाँ जाऊँगा ही नहीं। [कुर्सी पर आराम से बैठ जाते हैं।]

शीला : और मिस्टर ब्राउन आपका रास्ता देखेंगे?

आनन्द : [लापरवाही से] देखने दो।

शीला : तो फिर वे आपको भी पूरा हिन्दुस्तानी समझेंगे। कहकर भी आप अपना वादा पूरा नहीं करते।

आनन्द : कैसे वादा पूरा करूं? तुम जो ऐसी बातें कर देती हो कि कि मैं वादा-आदा सब भूल जाता हूँ। लाख रुपये की बात तो यह है शीला, कि मैं अगर तुम पर नाराज भी होना चाहूँ तो तुम मुझे नाराज नहीं होने देतीं। ऐसी बातें कर देती हो कि ज्वालामुखी पर्वत भी हिमालय बन जाता है।

शीला : [हँसकर] तो आप ज्वालामुखी पर्वत से हिमालय बन गए हैं! लेकिन हिमालय तो कभी हैट लगाता नहीं है।

[आनन्द और शीला दोनों हँस पड़ते हैं।]

आनन्द : [दहरा कर] हिमालय हैट नहीं लगाता...! अब तो मैं मिस्टर ब्राउन के यहाँ जा ही नहीं सकता। लो, तुम भी बैठो।

शीला : मुझे बैठने की फ़ुर्सत कहाँ ? मुझे आपका हैट खोजना है। और फिर अविनाश का नौकर शंभू आया है, उसे नमक देना है।

आनन्द : [आश्चर्य से] नमक देना है, कैसा नमक ?

शीला : मैं क्या जानूँ ! अविनाश ने नमक मँगवाया है।

आनन्द : क्या 'नमक-सत्याग्रह' करेगा ? अरे अब 'इंटेरिम गवर्नमेंट' आ गई है। सब से पहले 'नमक का कर' ही हटाया जायगा। लेकिन वह नमक क्यों चाहता है ?

शीला : कहिए तो मैं उससे पूछ लूँ ?

आनन्द : तो फिर तुम बैठोगी नहीं ?

शीला : आपको मिस्टर ब्राउन के यहां जाना है। वे क्या कहेंगे कि आप अपनी बात नहीं रखते।

आनन्द : [उठकर] मैं जाने को तो चला जाऊँ, लेकिन जैसा मैंने कहा कि मिस्टर ब्राउन ज़रा एटीकेट के ज़्यादा पाबन्द हैं। मैं उनके सामने किसी प्रकार भी अपना मज़ाक़ नहीं उड़वाना चाहता।

शीला : मज़ाक क्यों उड़ाएँगे ? आप हिन्दू हैं, अंग्रेज़ तो हैं नहीं। बिना हैट के आपकी जात तो चली नहीं जायगी ?

आनन्द : जात आजकल रही कहाँ, जो चली जायगी ? लेकिन जब किसी ख़ास फ़ैशन के कपड़े पहनो तो फिर अच्छी तरह पहनना चाहिए। नहीं तो सब छोड़ देना चाहिए। अब तुम्हीं सोचो अगर इस सूट के साथ फ़ेल्ट हैट न रहे तो कैसा लगे ?

शीला : [अभिनय-सा करते हुए] जैसे चन्द्रमा क ऊपर से एक काला बादल हट गया है !

आनन्द : [हंसते हुए] अच्छा, तो तुम भी कविता करने लगीं, क्या कहना है !

शीला : आपने पूछा तो मैंने बतलाया।

आनन्द : नहीं शीला, बात यह है कि अगर मेरे सिर पर, इस सूट के

साथ फ़ेल्ट हैट न रहे तो ऐसा मालूम होगा जैसे मैं किसी कॉलेज का स्टूडेन्ट हूँ, या किसी स्टूडियो का ऐक्टर।

शीला : तो इसमें बुराई क्या है? स्टूडेन्ट या ऐक्टर बुरे आदमी तो होते नहीं।

आनन्द : उन्हें बुरा कौन कहता है? लेकिन उनकी बराबरी मैं नहीं कर सकता। स्टूडेन्ट या ऐक्टर का कलेजा [हाथ से बतलाकर] इतना बड़ा होता है! सौ से प्रेम करने का नाटक करते हुए वे एक से भी प्रेम नहीं करते। जी, इतन हौंसला मुझ में नहीं है।

शीला : [मुस्कुराकर] आप तो ऐसी बातें करते हैं जैसे आप कभी स्टूडेन्ट रहे ही न हों।

आनन्द : मेरी क्या पूछती हो, शीला! मैं तो जब स्टूडेन्ट था तब प्रेम से कोसों दूर था और सबसे बड़ी बात तो यह है कि म पूरे डेढ़ बित्ते की चोटी रखता था। नये फ़ैशन की लड़कियाँ चोटी वालों से प्रेम नहीं करतीं। लंबी चोटीवाला प्रेम की बातें समझ ही नहीं सकता और फिर ख़ुद उनके पास डेढ़ हाथ की लंबी चोटी रहती है, बिलकुल काली नागिन जैसी!

शीला : [व्यंग से] कभी डसा है उस नागिन ने आपको?

आनन्द : [लापरवाही से] मुमकिन हो, डसा है लेकिन जहर नहीं चढ़ा। अगर चढ़ता तो फ़िर तुमसे शादी न करता।

शीला : [कटुता से] तो अब कर लीजिए अपनी दूसरी शादी!

आनन्द : [मुस्कुराकर] अंगूर के बाद बेर अच्छे नहीं लगते, शीला!

शीला : [कुछ करते हुए] अच्छा, यह बात है! तो अब आप चाहते हैं कि म भीतर चली जाऊँ।

आनन्द : अच्छा, इतनी-सी बात पर? नहीं, नहीं, तुम क्यों जाओ! मैं तो बाहर जा ही रहा ँ। बस आख़िर में एक बात कहकर जाता ँ कि भई, बुरा मत मानना।

शीला : नहीं, नहीं, आप कहिए।

आनन्द : कहूँ ?

शीला : हाँ, हाँ, कहिए।

आनन्द : वह यह कि...अच्छा, नहीं कहता !

शीला : कहिए न ?

आनन्द : वह यह कि...यदि मेरा नया फ़ेल्ट हैट भविष्य के किसी मोची के भाग्य से मिल जाय तो उसमें फिर कभी···आलू...

शीला : [बीच ही में] फिर वही बात ? क्या मैं घर से चली जाऊँ ?

आनन्द : उफ़ओह, तुम फिर बुरा मान गईं ! मेरी बात पूरी सुनी नहीं और मोरचा तैयार हो गया। अरे, म नौकर के बारे में कह रहा था कि उससे... ... ...

शीला : [बीच ही में] देखिए, आप हैट लगाना ही छोड़ दीजिए।

आनन्द ; क्यों, क्या मुझे हैट अच्छा नहीं लगता ?

शीला : अच्छे लगने, न लगने की बात नहीं है। हैट से लड़ाई-झगड़ा होता है।

आनन्द : तो फिर क्या लगाऊं ?

शीला : गांधी टोपी लगाइए। अब कांग्रेस मिनिस्टरी भी आ गई है। गांधी टोपी की शोभा ही दूसरी होती है।

आनन्द : लेकिन उसमें फ़ेल्ट हैट के बनिस्बत और अच्छी तरह से आलू रक्खे जा सकते हैं।

शीला : हाँ, अगर आलू रख भी दिए जायँ तो बाद में वह धुलाकर काम में भी लाई जा सकती है।

आनन्द : ठीक, तब तो उस टोपी में आलू ही अधिक रक्खे जायेंगे। मेरे सिर पर वह कम आ पायगी। अच्छा, देखा जायगा। अभी तो इसी तरह जाता हूँ। आज मिस्टर ब्राऊन के यहाँ नहीं जाऊँगा। यों ही टहल कर लौटता हूँ। मिस्टर ब्राऊन के यहाँ कहला दूँगा कि आज

नहीं आऊँगा।

शीला : नहीं, नहीं, आप जरूर जाइए।

आनन्द : अच्छी बात है। [प्रस्थान कर हैं कुछ। चलकर रुकते हुए] लेकिन हाँ, तबतक मेरा नया हैट खोज रखना।

शीला : कोशिश करूंगी। [आनन्द मोहन का प्रस्थान। कुछ देर तक शीला आनन्द मोहन के जाने की दिशा में देखती रहती है फिर गहरी साँस लेकर कमरे में दौड़ती है।] कहाँ है हैट ? रखते भी तो ऐसी जगह हैं जहाँ हैट बनानेवाले को भी न मिले। [कमरे के कोने और कुर्सियोंके पीछे देखती है।] छोटा-सा हैट और इतनी बड़ी बात ! [झुंझलाकर] मैं भी देखती हूँ। [पुकारकर] शंभू, ओ शंभू!

शंभू : [नेपथ्य से] जी सरकार !

शीला : इधर तो आ जरा ! [स्वगत] यही कम्बख्त सारी लड़ाई की जड़ है। अभी ठीक करती हूँ। हैट में आलू रक्खे यह बेवकूफ, और पीसी जाऊँ मैं.....! (शंभू का प्रवेश। आयु २५ वर्ष। घुटने तक धोती और लंबा कुरता पहने हुए है। सिर पर छोटा-सा साफा जो बेतरतीबी में लपेट लिया गया है। कंधे पर एक मैला-सा अंगोछा। उसके कपड़ों पर धब्बे और गंदगी के निशान हैं। आकर लंबा-सा सलाम करता है।]

शीला : क्यों रे, तूने आलू क्यों रक्खे ?

शंभू : [कानपर हाथ रखकर] सरकार, आलू तो हम देखबै नाहीं किए। हमका तो निमक के बरे भेजे हैं बिनास भैया।

शीला : अरे, मैं आज की बात नहीं कहती। पिछले हफ्ते तू ने साहब की टोपी में आलू रक्खे थे।

शंभू : [उत्साह से] तो काहे न रख देई सरकार ? ऐसन बड़का-बड़का आलू रहे। भुइयाँ मां परा रहे। माळी-ऊळी ओकरे उप्पर बैठत रहे। आप तो मालिक हैं, मालिक ओका थोरौं उठाय सकित हैं ? आप तो आँखिन ते देखि लइ हैं। उठावा तो हमका चाही सरकार !

शीला : [व्यंग्य से] तूने अच्छा उठाया !

शंभू : [हाथ हिलाकर] हम तो आपन अक्किल ते कहिन कि ई सरकारी माल है । ओहिका सम्हार के धरि देई । कोऊ उठाय न ले जाय । नहीं तो ऊ हमरे मत्थे जाई । सरकार जब मँगि हैं तब कहां ते पाउब ?

शीला : अरे, तो उठाकर किसी बरतन में रख देता । साहब की टोपी में क्यों रख दिए ?

शंभू : [समझाते हुए] अब सरकार, ई माँ कौन बात ? जब हम तरकारी-उरकारी लियै के बरे बजार जात है, तो आपन साफा मां नाहीं बांधत ? तौ अंगौछा रहा तो उहि माँ बाँध लीन और ते अंगौछा नाहीं था, तौ आपन साफा माँ बाँध लीन । अपना साहब साफा-वाफा बंधतै नाहीं । टोपी उनके रही । हम ओही माँ आलू धरि दीन सजाय के । बिनास भैयो ऐसन करत हैं ।

शीला : [हंसकर] जैसा तू, वैसा अविनाश । लेकिन हैट में आलू रखना चाहिए ?

शंभू : अब यहि माँ कौनो बात बिगिड़ी नाहिन । जैसन हमार साफा वैसने साहब क टोपी ।

शीला : तो तू साहब को भी अपनी तरह समझता है ?

शंभू : [आतंक से] अरे सरकार, साहब बड़वार मनई आँय, उनके चरन कै धूरि क बिरोबरी हम कइ सकित है ? कहाँ राजा भोज, अउ कहां गंगू तेली ! [हंसता है ।]

शीला : तेरे कहने का मतलब तो यही निकलता है कि जब साहब तरकारी ख़रीदने के लिए जायँ तो वे भी अपनी टोपी में तरकारी रख लें ।

शंभू : [हाथ जोड़कर] ऊ काहे ख़रीदै जायँ, हम मनई काहे के बरे हैं सरकार ? हम नौकर अही । हमका जौन हुकुम देयँ, हम ले आउब जाय । ऊ आपन बंगलवा मां बैठ क सिगरेट-उगरेट पिएँ, कुरसिया पै बैठैं । हम मनई कै काम आय बजार-उजार करै का ।

शीला : [झुंझलाकर] तू बातें समझ ही नहीं सकता। देख, आलू रखने से उनकी टोपी में धब्बे लग जायँ तो फिर कौन जवाब दे ?

शंभू : अब सरकार, कसस उनका जवाबु देई ! ऊ सरकारी अफसर आँय, मुदा धब्बा पड़े माँ कौन दोस है ? पहिरै का चीज़ मां तो धब्बा-उब्बा पड़िन जात हैं। हमरो कपड़ा मां देखें, सैकरन धब्बा पड़िगे हैं। [अपने कपड़े दिखलाता है।] बड़ाका धब्बा होय, और हुकुम होय तो उहि का सबुन्याय देई, छूट जाई।

शीला : गधा कहीं का ! साबुन लगाने से साहब की टोपी ठीक बनी रहेगी ?

शंभू : [आतंक से] अब सरकार, सरकारी टोपी की बात हम कहि नाई सकत। आपन हिन्दुस्तानी टोपी जौन अहै, ऊ ऐसन होत है कि जै फेरा धोवा जाय तै फेरा उज्जर होइ जात है। और सरकार, कसूर की बात होय तौ माफ़ी दीन जाय। अरे हाँ, सरकार, हमार अकिल तौ हमरे लायक़ है, आप से का कही !

शीला : तुझसे बात करना ही फ़िज़ूल हैं। जा, अपना काम कर।

शंभू : काली मिरिच कहवां धरि दीन है ?

शीला : काली मिर्च ? काली मिर्च का क्या करेगा ?

शंभू : बिनास भैया के बरे चाही।

शीला : अभी तो कह रहा था कि अविनाश ने नमक मँगवाया है। अब काली मिर्च की बात कह रहा है।

शंभू : हम कहिन कि निमक तो मँगवइबे केहिन हैं, साथै माँ काली मिरिचइऊ लेत जाई। कोऊ चीज खाए माँ निमक के साथ काली मिरिच अलगै मजा देई।

शीला : तू हर एक बात में अपनी अक़्ल लगाया करता है, चल मैं अभी आती हूँ।

शंभू : [अलग] सेवा खुसामदो की बात पै सरकार गुसियाय जात हैं हमार ऊपर। ई हमार भागै खोट आय ससुर।

शीला : वहां अलग क्या बक रहा है ?

शंभू : सरकार मन मां सोचित अही कि निमक और काली मिरिच का कंटरोल तो न होई ?

शीला : [हंसकर] सब से बड़ी अक़्ल वाला तो तू ही है। सबसे पहले स्वराज तुझी को मिलेगा। जा, अंदर जाकर नमक पीस।

[शंभू शैतानी दृष्टि से देखता हुआ जाता है।]

शीला : [परेशानी से] यह नौकर है अविनाश का। सीधी बात कहो उल्टी समझता है। और फिर अपनी अक़्लमंदी से समझाता है। मूर्खता यह करे और सज़ा मिले मुझे। कहीं इसी ने तो उनके नये हैट से बाज़ार का कोई काम नहीं लिया? ठहरो, पूछती हूं उससे...

[शीला शंभू को फिर पुकारना चाहती है कि उसी समय दरवाजे पर आवाज होती है।] चाचाजी !

शीला : कौन ? [आवाज] अविनाश !

शीला : ओ अविनाश; आओ, चले आओ।

[अविनाश का प्रवेश। आयु १८ वर्ष। अंग्रेजी पोशाक में बड़ी सजधज के साथ आता है। बढ़िया सूट और टाई। बाल ढंग से संवारे हुए।]

अविनाश : चाचाजी नहीं हैं क्या ? गुड इवीनिंग, चाचीजी !

शीला : अब तू पढ़ लिखकर यही कहेगा ? गुड इवीनिंग, गुड मार्निंग। रहन-सहन के साथ आत्मा भी बेच डाली है क्या ?

अविनाश : आत्मा भी कभी बिकती है चाचीजी ? बिकती है मूंगफली। [जोर से] अंदर ले आओ। चाचीजी, कोई हानि तो नहीं है। ओ मनकू !

[मनकू, खोम्चेवाला, अविनाश के हैट में लबालब मूंगफली भरकर लाता है। शीला इस विचित्र दृश्य को देखकर चौंक उठती है।]

शीला : यह क्या ?

अविनाश : [मनकू से] वहीं रहो, वहीं रहो। अन्दर फ़र्श बिछा हुआ है, गंदा हो जायगा। ला, मुझे दे। [मनकू के हाथ से अविनाश मूँगफली भरा हैट लेता है और शीला की ओर देखकर] रख दूं इस टेबिल पर ? [बिना उत्तर की प्रतीक्षा किए हुए] बहुत अच्छी मूँगफली भूनता है मनकू। [मनकू से] ये लो दो आने पैसे। [पॉकेट से पैसे निकालकर देता है।] रोज़ इसी तरह भूना करो, समझे!

मनकू : [पैसे लेकर सलाम करता हुआ] बहुत अच्छा सरकार! चीनिया बदाम तो सब मेवन माँ फ़िरस्ट किलास है बाबू! [शीला की तरफ देखकर] सलाम, सरकार! [अविनाश की तरफ देखकर शीला की तरफ इशारा करते हुए] इनहू का हमार गाहक बनाय देयं!

शीला : चलो, मुझे नहीं चाहिए तुम्हारी चीनिया बदाम। इन्हीं अपने बाबू को खिलाओ।

अविनाश : चख के देखो चाची! [मनकू से] अच्छा अभी जाओ मनकू! फिर कभी इनसे कहूँगा।

[मनकू सलाम करके जाता है।]

शीला : यह कौन-सा स्वांग है? फ़ेल्ट हैट में मूंगफली! यह है तो तेरा ही हैट?

अविनाश : और किसका है चाची? अभी परसों ही तो आया है। चाचाजी ने नया ख़रीदा है मेरे लिए।

शीला : और उसकी तू यह इज़्ज़त करता है! कितने दिन चलेगा?

अविनाश : अरे चाची, इस्तेमाल ही के लिए तो सब चीज़ें होती हैं। यह हैट ज़िन्दगी भर तो काम देगा नहीं। और फिर मूंगफली जैसी चीज़!

शीला : वाह रे, तेरी मूंगफली! हैट में नौकर आलू रखता है और मालिक मूंगफली!

अविनाश : तो क्या शंभू ने कभी हैट में आलू रखे थे?

शीला : अरे, अभी चार छः रोज़ हुए, तरकारी बेचनेवाली आई थी। एक सेर आलू दे गई। शंभू वहीं पास बैठा था। शंभू ने पास में कोई बर्तन न देख तेरे चाचाजी के फ़ेल्ट हैट में ही आलू रख दिए। तेरे चाचाजी मुझ पर नाराज़ हो रहे थे कि फ़ेल्ट हैट भी कोई आलू रखने की चीज़ है!

अविनाश : वाह, बड़े मज़े की बात है। चाचाजी कहाँ हैं?

शीला : इसी बात पर झुँझलाते हुए कहीं बाहर चले गए हैं।

अविनाश : कब तक आएँगे?

शीला : मैं क्या बतलाऊँ कब तक आएँगे? उनका नया हैट भी खो गया है। मुझे खोजने के लिए कह गए हैं।

अविनाश : कौन-सा नया हैट? जो अभी-अभी मेरे हैट के साथ आया है?

शीला : हां, हां, वही।

अविनाश : खो गया? कहाँ?

शीला : अब यह क्या पता? कहीं भूल आए होंगे!

अविनाश : तो चाची, अब देखिए। उन्हें हैट का क्या सुख मिला? अभी आया, अभी खो गया! और मेरे लिए तो एक नहीं हज़ार सुख। हैट का हैट और तश्तरी की तश्तरी!

शीला : तेरे ही गुन देख-देख कर तो शंभू हैट में आलू रखता है।

अविनाश : खैर, शंभू तो बेवक़ूफ़ है। उसकी क्या बातें करतीं हैं। लेकिन मैं तो यह कहता हूँ चाची, कि फ़ेल्ट हैट चाहे आलू रखने की चीज़ न हो, लेकिन इसमें मूँगफली बड़ी सफ़ाई के साथ रक्खी जा सकती है। जब हम लोग सिनेमा हॉल में बैठते हैं तो फ़िल्म देखने के साथ मूँगफली खाने में जो आनन्द आता ह उसका वर्णन शेक्सपियर भी नहीं कर सकता! और फिर सिनेमा के बीच-बीच में मूँगफली तोड़ने की जो आवाज़ होती रहती है, वह न-खानेवालों के मन में हलचल मचाती रहती है! फिर भुनी हुई ताज़ी मूँगफली की सुगंधि तो...वह भी

बरसात के दिनों में ! बस, कुछ न पूछो, चाची !

शीला : [मुस्करा कर] अरे, चुप भी रहेगा मूँगफली वाले, मूँगफली न हुई, अमृत हुआ !

अविनाश : उससे भी ज़्यादा, चाची ! अमृत में वह सुगंधि और सोंधापन कहाँ ? और फिर जब सिनेमा हॉल के बीच में हम बैठे हों, हमारी गोद के बीच में फ़ेल्ट हैट हो, फ़ेल्ट हैट के बीच में ताज़ी मूँगफली रक्खी हों और मूँगफली के बीच में अपने और साथ बैठनेवाले दोस्तों के हाथ हों तो फिर सिनेमा का आनन्द चौगुना हो जाता है ! तुम खाओ न चाची, ये ताज़ी मूँगफली !

शीला : मुझे नहीं खाना, तुझे ही मुबारक रहें ये मूँगफली। तो क्या इतनी मूँगफली लेकर सिनेमा जा रहा है ?

अविनाश : और क्या ? तुम्हें लेने आया हूँ, चाची!

शीला : मुझे नहीं जाना। अपने चाचाजी को ले जा।

अविनाश : चाचाजी भी चलें तो और भी अच्छा ! लेकिन तुम ज़रूर चलो चाची ! और हाँ, अगर चाचाजी न चलें तो उनका रेन कोट ले चलिए। बादल उठे हुए हैं।

शीला : न चाचाजी जायेंगे, न मैं जाऊँगी, सच्ची बात यह है। तू उनका रेन कोट भले ही ले जा।

अविनाश : लेकिन चाची, तुम्हें तो ज़रूर ही चलना चाहिए। चार्ली चैपलेन का पिक्चर है !

शीला : तू किस चार्ली चैपलेन से कम है ! तुझे ही देखकर मैं सिनेमा देख लेती हूँ, देख ले, चार्ली चैपलेन फ़ेल्ट हैट में मूँगफली ले जा रहा है !

अविनाश : अब चाची, यह मूँगफली न ले जाऊं तो सिनेमा का सच्चा आनन्द कैसे आए ? और फिर इतनी ताज़ी मूँगफली, जाना पहिचाना हुआ आदमी है। उसने सामने ही ताज़ी मूँगफली भून दीं। मनकू ने

न ? जो अभी आया था। सिनेमा के सामने के खोम्चेवाले तो कई दिनों की बासी मूँगफली रखते हैं। शंभू से मैंने कह दिया था कि नमक की पुड़िया भी साथ ले चलना। शंभू आया था ?

शीला : हाँ, बैठा हुआ है अन्दर, तुम्हारी राह देख रहा है, या फिर नमक पीस रहा होगा ! काली मिर्च भी माँग रहा था।

अविनाश : [प्रसन्न होकर] काली मिर्च भी ? अच्छा है, कुछ-कुछ होशियार !

शीला : उसकी होशियारी का क्या कहना ! तू, शंभू और मूंगफली सब एक दूसरे से बढ़कर हैं, किस-किस की तारीफ़ करूँ ?

अविनाश : तुम किसी की तारीफ़ न करो चाची, मूँगफली खाके देखो। तब तक मैं अंदर जाकर शंभू को देखूँ और हाथ-मुँह भी धो लूँ। मूँगफली इस टेबिल पर रक्खी रहने दूँ तो कोई हानि तो नहीं है ?

शीला : क्या हानि है ! मूँगफली रेंग कर हैट के बाहर तो जायँगी नहीं ?

अविनाश : वे तो रेंग कर सिर्फ़ एक ही तरफ़ जाती हैं...पेट की तरफ़ ! अच्छा तो मैं जल्दी हाथ मुँह धो लूँ। [शीघ्रता से प्रस्थान]

शीला : [हैट की ओर देख कर] हैट में मूँगफली ! आजकल के लड़के अजीब हैं ! नये-नये फ़ैशन निकालते हैं। अब वे आवेंगे तो दिखला-ऊँगी कि हैट में मूँगफली भी रक्खी जाती हैं...! [सोच कर] लेकिन उनका हैट तो खोजा ही नहीं। आते ही वे फिर हैट की बात ले बैठेंगे। चलूँ खोजूँ। खोजने के लिए कह गए थे। अविनाश को रेन कोट भी दे दूँ !

[शीला कुर्सियों के आसपास फिर देखती हुई अन्दर की ओर दृष्टि डालती है। अन्दर की ओर देखते-देखते शीला अन्दर चली जाती है। एक क्षण के लिए निस्तब्धता। फिर शीला की आवाज़-' शंभू, क्या अविनाश हाथमुँह धोने बाथरूम में गया है ?' शंभू का उत्तर-' हाँ, सरकार, बाथे मों गवा है।' फिर कुछ निस्तब्धता। इसी क्षण में आनन्द मोहन का प्रवेश। वे हैट में मूँगफली रक्खी देखकर द्वार पर ही ठिठक जाते हैं।]

आनन्द : [क्रोध और आश्चर्य से] ओह् यह बात है ! मिले कहाँ से ? मेरे हैट में तो मूँगफलियाँ रक्खी जाती हैं ! उस रोज आलू रक्खे गए थे, आज मूँगफलियाँ रक्खी हुई हैं। गोया मेरा हैट न हुआ, टोकना हुआ । आज मूँगफली है, कल मूँग की दाल रक्खी जावेगी। वाह री शीला, अच्छी अक्ल है तेरी ! फिर कह देगी [मुँह बना कर] शंभू ने रक्खी हैं ! अच्छा, देखता हूँ। [जोर से क्रोध भरे स्वर में] शीला...! शीला...!

[नेपथ्य से] आई।

आनन्द : [चिढ़ कर] आई ! आई !! मैं तुम्हें देखूँ ? यह मेरी और मेरे हैट की इज़्ज़त है ! यहाँ मेरा हैट घर के कामों में इस्तेमाल किया जाता है, वहाँ मैं उसे खोजने में घंटों परेशान होता हूँ! मैं आज दिखला दूँगा कि... [शीला का प्रवेश]

शीला : [आकर प्रसन्नता से] मैं नहीं बतलाऊंगी, मैं नहीं, लेकिन [रुक कर] आप बहुत जल्दी लौट..... !

आनन्द : [क्रोध से] जी, इसीलिए बहुत जल्दी लौट आया हूँ कि देखूँ आप मेरे हैट में कितनी सफ़ाई के साथ मूंगफली रखती हैं !

शीला : लेकिन...

आनन्द : [बीच ही में] फिर वही लेकिन ? मैं तो 'लेकिन', 'लेकिन' सुनते हैरान हूँ। फिर कहोगी [मुँह बनाकर] लेकिन शंभू ने उसमें मूँगफली रख दीं !

शीला : सुनिये तो.....

आनन्द : क्या सुनूं ? मेरा तो खून खौल उठता है, जब देखता हूँ कि तुम भी मेरे साथ धोखा करती हो। इधर मेरे हैट में मूँगफली रख दीं और उधर कह दिया कि वह तो मुझे मिलता ही नहीं।

शीला : लेकिन आपका हैट...

आनन्द : [फिर बीच में] जी, मेरे हैट से भी आप सेवा लेना चाहती हैं ?

क्या मेरी सेवाओं से आपका मन संतुष्ट नहीं होता ? लेकिन मैं अब इसे आपकी सेवा में नहीं रहने दे सकता। यह अब मेरे किस काम का रह गया ? इसे भी किसी मोची को दे दो ! यह भी जाय, मैं ही इसे खत्म कर दूँ, इस तरह...

[आनन्द टेबिल पर मूँगफली से भरे हुए अविनाश के हैट को जमीन पर फेंक देता है और उसे पैरों से कुचल देता है।]

आनन्द : [क्रोध में दाँत पीसते हुए] इस..तरह...इस..तरह...

शीला : [घबरा कर] ओह, अविनाश का हैट !

आनन्द : [एक क्षण में अप्रतिभ होकर] अविनाश का हैट ? [जोर से] कैसा अविनाश का हैट ?

शीला : यह हैट अविनाश का है।

आनन्द : अविनाश का है ! तुमने मुझसे कहा क्यों नहीं ?

शीला : आपने मुझे कहने ही नहीं दिया। जब-जब मैं बोली, आपने बीच ही में टोक दिया।

आनन्द : [अव्यवस्थित होकर] लेकिन अविनाश का हैट यहाँ आया कैसे ?

शीला : अविनाश सिनेमा जा रहा है। यहाँ आया हुआ है। उसी का हैट...

आनन्द : अच्छा ! यह अविनाश का हैट है ? मेरा नहीं ?

शीला : जी नहीं, आपका नहीं।

आनन्द : [सोचते हुए] हां, मेरा हैट तो खो गया था। अब क्या हो ?

शीला : [चिन्तित होकर] मैं क्या बतलाऊं !

आनन्द : [सोचते हुए] मेरा हैट खो गया था ?

शीला : जी हां, मैं उसे अभी तक खोज रही थी।

आनन्द : फिर मिला ?

शीला : क्या बतलाऊं !

आनन्द : उसका क्या मतलब ?

शीला : [मुस्कुरा कर] पहले मुँह मीठा कराइये तब बतलाऊंगी ।

आनन्द : [प्रसन्न होकर] यानी मिल गया ! [कुछ मुस्कुराहट के साथ] कहां मिले महाशय ?

शीला : नहीं बतलाती ।

आनन्द : तुम्हें मेरी क़सम शीला, बतला दो, तुम्हें मिठाई खिलाऊंगा, बतला दो ।

शीला : अभी तो आप नाराज़ हो रहे थे ।

आनन्द : अब ज़िन्दगी में कभी नाराज़ नहीं होऊँगा, शीला ! चाहे तुम मेरे हैट में आलू, चुकन्दर या मूँगफली क्यों न रक्खो !

शीला : [तीव्रता से] फिर आपने मेरा अपमान किया ?

आनन्द : अच्छा लो नहीं करता ! पर जल्दी बतलाओ ।

शीला : अच्छा सोच लूँ...

आनन्द : अरे यह अविनाश का हैट मेरी जान खा रहा है, जल्दी बतला दो !

शीला : [चौंक कर] ओ, अविनाश का हैट ! अच्छा तो फिर सुनिये...

आनन्द : हाँ, हाँ, कहो...कहो न...

शीला : रेन कोट के नीचे ।

आनन्द : रेन कोट के नीचे ?

शीला : हाँ, रेन कोट के नीचे । अविनाश सिनेमा देखने जा रहा है उसने कहा—'बरसात के दिन हैं । मुझे चाचाजी का रेन कोट चाहिए । जैसे ही मैंने खूँटी पर से रेन कोट उठाया वैसे ही उसके नीचे से हैट महाशय 'टप्प' से गिरे !'

आनन्द : [चिन्तित प्रसन्नता से] कहाँ छिपा था कम्बख्त ?

शीला : आपने ही हैट के ऊपर रेन कोट टांग दिया होगा ।

आनन्द : [सोचते हुए] हाँ, हाँ, याद आया मैंने ही अंधेरे में जल्दी से रेन

कोट टाँगा था। मैं क्या जानता था कि यह रेन कोट हैट के नीचे टँग जायगा!

शीला : लेकिन अब अविनाश के हैट का क्या होगा?

आनन्द : मैंने तो उसे पैरों से कुचल दिया!

शीला : कुचल ही नहीं दिया, उसका सब शेप-वेप भी तोड़ दिया।

आनन्द : तो बतलाओ, मैं क्या करूं?

शीला : और जैसा आप कहते हैं, आजकल फ़ेल्ट हैट मिलते भी नहीं।

आनन्द : हाँ, कहीं नहीं मिलते।

शीला : और अविनाश क्या कहेगा? अगर उसे मालूम हुआ कि आपने उसके हैट को पैरों से कुचल दिया, तो वह क्या समझेगा? समझेगा कि आप पागल हो गए हैं, या शराब पी गए हैं!

आनन्द : ऐसा ज़िन्दगी में कभी नहीं हो सकता शीला, लेकिन इस वक्त क्या किया जाय? मेरी तो सारी इज़्ज़त गई! [चिन्तित मुद्रा में कुर्सी पर बैठ जाते हैं।]

शीला : लेकिन जो कुछ करना है जल्दी ही कीजिए। अविनाश न जाने किस वक्त आ जाय।

आनन्द : [सहसा उठकर] हाँ, न जाने किस वक्त आ जाय। क्या कर रहा है अविनाश?

शीला : अन्दर है। यह तो कहिए, हाथ-मुँह धो रहा है, नहीं तो कब का यहाँ आ जाता।

आनन्द : तो फिर.....

शीला : फिर क्या?

आनन्द : [सोचते हुए] फिर...तो फिर...मेरा हैट

शीला : [चंचलता से] हाँ, आपका हैट...आपका हैट....ले आऊँ?

आनन्द : हा, लेती आओ। दोनों एक ही रंग के हैं, एक ही साइज़ के।

अविनाश को मालूम भी नहीं होगा कि....

शीला : [शीघ्रता से] तो फिर मैं जल्दी ही ले आती हूँ।

आनन्द : हाँ, तब तक मैं मूँगफली बीनता हूँ। दरवाज़ा बन्द करती जाना। [शीला जाती है। पुकार कर] और देखो ! [शीला लौटकर आती है।] अगर मुमकिन हो सके तो अविनाश को बातों में उलझा लेना।

[शीघ्रता से शीला दरवाजा बन्द करके जाती है। आनन्द दरवाजे की तरफ रह-रह कर देखते हुए एक-एक मूँगफली समेटते हैं। समेटते हुए कहते जाते हैं- वाह री किस्मत...वाह रे भाग्य....वाह रे फेल्ट हैट....कुछ क्षणों में शीला फेल्ट हैट लेकर आती है, और दरवाजे की ओर देखती हुई आनन्द मोहन को देती है।]

शीला : [व्यग्रता से] जल्दी कीजिए...जल्दी कीजिए...अविनाश कंघी करके आना ही चाहता है।

आनन्द : [प्रसन्नता से] तो बात भी बन गई। अब देर क्या है? कुचला हुआ हैट कुर्सी के पीछे डाल दो। [अपना हैट मूंगफली से भरकर टेबिल पर पूर्ववत् रख देते हैं। शीला कुचला हुआ हैट कुर्सीके पीछे डाल देती है।]

शीला : [व्यंग्य से] अब आपने अपने ही हाथों मूँगफली रक्खीं अपने हैट में ! [व्यंग की मुस्कुराहट]

आनन्द : चुप रहो, शीला, इस वक़्त। यहाँ तो मेरा हैट जा रहा है और तुम्हें आवाज़ कसने की पड़ी है!

शीला : आप ही सोचिए !

आनन्द : देखो, बातचीत का ढंग बदलो। [जोर देकर दबे स्वर में] बदलो ...बदलो...सिनेमा की बातें करो।

शीला : [हठला कर] देखिए, आप सिनेमा चले जाइए न ? बेचारा अविनाश आया है।

आनन्द : [प्रभुता से] तुम्हें जाना हो तो तुम चली जाओ। मैं नहीं जाऊँगा, टिरोन पावर का ऐक्टिंग देखने।

शीला : [दबे स्वर में जोर देकर] टिरोन पावर नहीं, चार्ली, चार्ली चैपलेन।

आनन्द : नहीं नहीं, मैं नहीं जाऊँगा ! चार्ली चैपलेन का ऐक्टिंग देखने !

[अविनाश का प्रवेश]

अविनाश : [आते हैं] नमस्ते चाचाजी ! [रुक कर संकुचित स्वर में] देखिए, माफ़ कीजिए मेरे पास एक ही रूमाल था ।

आनन्द : रूमाल हो चाहे न हो, लेकिन मैं तुमसे सख्त नाराज़ हूँ । मेरी नज़र से हट जाओ तुम...तुम मुझे समझते क्या हो ?

अविनाश : चाचाजी, माफ़ कीजिए ।

आनन्द : मैं तुमसे कुछ नहीं बोलता तो इसके माने यह हैं कि तुम अपनी बेहूदगी में बढ़ते ही जाओ ! म भाई श्याम किशोर को लिखूँगा कि तुम हाथ से बाहर हुए जाते हो ।

अविनाश : [नम्रता से] चाचाजी, मुझे माफ़ कीजिए । [शीला से] चाचीजी ! आप मुझे एक रूमाल दे दीजिए । मैं मूँगफली उसमें बाँध लूँ ।

आनन्द : नहीं, नहीं, उसी हैट में रहने दीजिए । यहाँ मैं आपके लिए अपने हैट जैसा अच्छे से अच्छा हैट लाऊँ, आप उसकी यह इज़्ज़त करें ! उसमें मूँगफली रखें ! इतना अच्छा नया हैट मूँगफली रखने के लिए है ?

शीला : चलिए, जाने दीजिए । ऐसी ग़लती आयंदा कभी नहीं होगी । मैं रूमाल लाये देती ँ ।

आनन्द : [तीव्रता से] कोई ज़रूरत नहीं रूमाल लाने की । तुम्हीं ने उसे दुलार करके इतना बदतमीज़ बना दिया है, नहीं तो अविनाश इतना अच्छा लड़का था कि मुझे उस पर गर्व होता था । मैं उसे देखकर खुश हो जाता था, लेकिन इस वक्त वह अपने पिता और मुझे क्या, खुद अपने को धोखा दे रहा है ।

शीला : चलिए अब वह माफ़ी माँगता है, उसे माफ़ कर दीजिए ।

अविनाश : चाचाजी ! मैं माफ़ किये जाने लायक़ भी नहीं हूँ । मुझे सज़ा दीजिए ।

आनन्द : दर असल तुम्हें सज़ा मिलनी चाहिये। तुम्हें आज से कोई कपड़े नहीं मिलेंगे। तुम हैट लगाने लायक़ भी नहीं हो; क्योंकि तुम हैट की इज़्ज़त करना नहीं जानते। अब तुम यह हैट नहीं ले जाने पाओगे, समझे !

अविनाश : जैसी आज्ञा। म नहीं ले जाऊँगा।

आनन्द : हाँ, मैं इसे किसी मोची को दे दूँगा। शीला, जिस मोची को पुराना हैट दिया था, उस मोची को यह नया हैट भी दे देना। समझीं।

[शीला कुछ नही बोलती।]

अविनाश : तो फिर मुझे इजाज़त दीजिए, मैं जाऊँ ?

आनन्द : मैंने सुना है, तुम सिनेमा जाने वाले हो !

अविनाश : जी नहीं, अब मैं सिनेमा नहीं जाऊँगा।

आनन्द : नहीं, नहीं, ज़रूर जाइए। पढ़ने-लिखने की क्या ज़रूरत है ! हो चुकी पढ़ाई ! अब पढ़-लिख कर क्या करोगे ?

अविनाश : जी नहीं, मैं जाकर पढ़ूँगा।

आनन्द : यह नशा आज ही तक रहेगा, या आगे भी चलेगा ?

अविनाश : मैं वचन देता हूं कि आगे भी चलेगा।

आनन्द : आगे भी चलेगा ! ठीक है, लेकिन मुझे आशा तो नहीं है। अगर आगे चल सकता है तब तुम सिनेमा देखने आज जा सकते हो।

अविनाश : मेरी इच्छा नहीं है।

आनन्द : बेहतर है। लेकिन मैं तुम्हारे मनोरंजन में बाधा नहीं डालना चाहता। यदि जाना चाहो तो तुम सिनेमा आज जा सकते हो।

अविनाश : चाचीजी अगर साथ चलें तो...

आनन्द । हाँ अगर तुम्हारी चाचीजी जाना चाहें तो जा सकती हैं।

शीला : नहीं, मैं नहीं जाऊँगी, अविनाश !

आनन्द : अच्छा तो तुम अकेले ही जाओ।

अविनाश : जो आपकी आज्ञा ! [जानेके लिए प्रस्तुत होता है।]

आनन्द : ठहरो। [अविनाश रुक जाता है]

आनन्द : [अपने जेब से रूमाल निकालता हुआ] यह रुमाल लो, इसमें अपनी मूँगफली बांधो।

अविनाश : मुझे मूँगफली की ज़रूरत नहीं है।

आनन्द : मेरा हुक्म है, बाँधो।

[अविनाश आनंद से रूमाल लेकर हेट में रखी हुई मूंगफली बांधता है।]

शीला : मैं बाँध दूँ ?

आनन्द : तुम ठहरो, उसे बाँधने दो।

[अविनाश रूमाल में मूगफली पूरी तरह बाँध लेता है।]

अविनाश : अब मैं जाऊँ ?

आनन्द : नहीं। अपना हैट सिर पर लगाओ।

अविनाश : इस हैट के लायक़ मैं नहीं हूँ।

आनन्द : मैं तुम्हें इस हैट के लायक़ बनाता हूँ। उठाकर पहनो।

[अविनाश हैट पहनता है।]

आनन्द : अब हैट उतारकर हाथ में रख लो। कमरे में हैट लगाना एटीकेट के ख़िलाफ़ है।

[अविनाश हैट उतारता है।]

आनन्द : आयंदा मुझे इस तरह की हरकतें नहीं देखना चाहिए, समझे ?

अविनाश : मैं वचन देता हूँ।

आनन्द : अच्छा जाओ। शंभू को भी ले जाओ। रेन कोट सम्हाल कर रखना। आजकल मेरी चीज़ें बहुत खो रही हैं। मेरी आँखों के सामने मेरी चीजें चली जा रही हैं !

अविनाश : शंभू यहीं रहेगा। कुछ काम करना है। मैंने उससे कह दिया है। आगे जो आप आज्ञा दें और रेन कोट तो मैं कभी नहीं भूल सकता।

आनन्द : अच्छी बात है, शंभू को रहने दो।

अविनाश : चाचीजी; प्रणाम करता ँ। [आनंद से] प्रणाम करता हूँ !

आनन्द : जाओ। [अविनाश का प्रस्थान।]

[अविनाश के जाने के बाद आनंद और शीला एक दूसरे को देखते हैं।]

शीला : [मुस्कुरा कर] आपने तो अविनाश को एक मिनट में ही ठीक कर दिया।

आनन्द : मैं यह कैसे देख सकता ँ कि हमारे देश के लड़के इस तरह बिगड़ते चले जायँ ! न उन्हें समय का लिहाज़ हो, न संबंधियों का !

शीला : लेकिन आपका हैट मिलकर भी खो गया !

आनन्द : तो कोई चीज़ मुझे खोकर भी मिल गई !

शीला : यह मैं मानती हूँ, लेकिन आपके हैट का साइज़ और रंग एक न होता तो आज बड़ी मुश्किल पड़ती।

आनन्द : ये सब ईश्वर के करिश्मे हैं, शीला ! वह कौन-सी बात कहाँ ले जाकर जोड़ता ै। मैं जो अपनी बराबरी के कपड़े अविनाश को पहनाता था, ईश्वर ने उसे इसी क्षण के लिए निश्चित किया था। मेरी जिम्मेदारी की सचाई का यह राज़ निकला। कौन-सी बात किसलिए होती है, यह जान लेना आसान बात नहीं है।

शीला : [मंत्र मुग्ध होकर] यह बात आप बिल्कुल ठीक कहते हैं। सचमुच आज यह रहस्य मालूम हुआ।

आनन्द : लेकिन अपना नया फ़ेल्ट हैट और चलते चलाते एक नया रूमाल खोकर !

शीला : [एक गहरी सांस लेकर] खैर जाने दीजिए। लेकिन [कुचला हुआ हैट कुर्सी के पीछे से उठाते हुए] अब इसका क्या होगा ?

आनंद : [प्रसन्नता से] हां, हां, अब इस हैट में तुम आलू और चुकन्दर खूब रख सकती हो !

शीला : [मुस्करा कर] लेकिन एक शर्त पर !

आनन्द : [विस्मय से] वह क्या ?

शीला : आलू और चुकन्दर इसमें यह समझ कर रखवाऊँगी कि यह आपका ही हैट है !

आनन्द : [विनोद से] हाँ, हाँ, मेरा ही हैट, मेरा ही हैट समझ कर। अब एक गांधी टोपी का इंतज़ाम करो।

[परदा गिरता है।]

पारिवारिक दृष्टिकोण से—

छोटी-सी बात

पात्र-परिचय

राकेश : एक अध्ययनशील शिक्षक, आयु ३५ वर्ष।
उमा : राकेश की पत्नी, आयु ३० वर्ष।
मनोहर : राकेश का अशिक्षित नौकर, आयु ४५ वर्ष।

समय : संध्या, पाँच बजे।

[प्रयाग के कटरे में एक पुराना मकान । बीच के कमरे का पुरानापन नीले रंग की पुताई से दूर करने की चेष्टा की गई है । पुराने दरवाजों पर भी नीला वार्निश किया हुआ है और उन पर नीले परदे पड़े हुए हैं । कमरे की दाहिनी ओर एक टेबिल है, जिस पर नीला ही मेज़पोश है । उसी के समीप दो कुर्सियाँ पड़ी हैं । कुछ हटकर तख्तों से बना हुआ एक खुला बुकस्टैंड है, जिसमें तीन सतरों में पुस्तकें सजी हुई हैं । उसी के सामने एक दरी बिछी हुई है । ' बुक स्टैंड ' की बगल में एक आरामकुर्सी है, जिस पर एक ' कुशन ' है, उसमें धागों से फूल-पत्तियों के बीच ' गुड-लक ' कढ़ा हुआ है ।

कमरे की रूपरेखा में अभिरुचि का संकेत है । दीवालों पर रविवर्मा के बनाए हुए कुछ चित्र लगे हुए हैं । उन्हीं चित्रों में से एक बड़ा चित्र कमरे की बाईं दीवाल पर लगा हुआ है; उसमें पंचवटी की पर्णकुटी में राम-सीता की अत्यन्त भावमयी छवि है । सीता कांचन-मृग मारीच की ओर संकेत कर रही है और राम उसी ओर देख रहे हैं । यह चित्र अन्य चित्रों की अपेक्षा बड़े आकार का है, जो दूर से भी स्पष्टता के साथ देखा जा सकता है । उस चित्र के नीचे काठ का एक त्रिभुज है जिसमें बेल-बूटे का कटाव किया गया है । उस पर ' बेबी-वेन ' घड़ी है । घड़ी के समानान्तर एक शीशा है जो सामने और बाईं ओर के कोने में लगा हुआ है । टेबिल के ठीक सामने एक दरवाजा है जो अन्दर की ओर खुलता है ।

इस समय शाम के पांच बजे हैं । कमरे में दाहिनी ओर राकेश टेबिल के समीप वाली कुर्सी पर बैठ कर बड़ी एकाग्रता के साथ एक पुस्तक पढ़ रहे हैं । पुस्तक टेबिल पर रखी है, उसी की बगल में कागज का पैड है जिस पर राकेश कभी-कभी कुछ लिखने लगते हैं । कमरे में निस्तब्धता है । केवल घड़ी की ' टिक ', ' टिक ' सुनाई पड़ रही है । कुछ देर बाद मनोहर राकेश के पीछे की ओर से प्रवेश करता है । यह दरवाजा सामने के दरवाजे की विपरीत दिशा में है और घर के भीतर खुलता है । मनोहर भीतर से आकर चुपचाप खड़ा हो जाता है । राकेश की दृष्टि पुस्तक पर है ।]

मनोहर : [कुछ क्षण दाएं-बाएं देखकर अटकते स्वर में] बाबूजी, चाह पियै का बखत होइ गवा।

[राकेश पढ़ने में मग्न रहता है, नौकर की बात पर ध्यान ही नहीं देता।]

मनोहर : [कुछ देर उत्तर की प्रतीक्षा कर] बाबूजी, चाह धरी अहै। ऊ ठंढी हुई जाई। कइयू फेरा देखि-देखि कै लौट गैन। आप आपन काम माँ लाग हैं। ई पढ़ै का काम तो ऐस आय कि कबहूँ खतमौ नहीं होत।

राकेश : [सिर उठाकर पीछे देखते हुए] क्या है ?

मनोहर : [सम्हलकर] बाबूजी, चाह पी लेतेन तौ...

राकेश : [तीक्ष्णता से] देखो मनोहर, जब मैं पढ़ता रहूँ तो बीच में आकर शोर मत किया करो। समझे !

मनोहर : बाबूजी, हमका कौन जरूरति अहै सोर करै से। पढ़ाई से हमार कौन ताल्लुक ? न तौ हमार बापै पढ़ा रहे और न हम ही पढ़े अही। बहूजी कहिन कि बाबूजी के पास जाय कै बोल द्या कि चाह पी लेयँ, फिर जौन काम होय तौन करैं। चाह धरी अहै।

राकेश : [झुंझलाकर] देखता नहीं, काम में लगा हूँ ! चाय ठहरकर पिऊँगा।

मनोहर : बाबूजी, बहूजी आपका रस्ता देखति अहैं। उनका परन इहै अहो कि जब तईं बाबूजी न पी लेयँ तब तईं हम चाह न पियब। जब बहूजी हुकुम दीन हैं तौ हम आपके पास आवा अहै, आप का बुलावै के वास्ते, नाहीं तौ यह गुस्ताखी हम कइ नाईं सकत।

राकेश : इन कम्बख्तों से बात करना अपना दिमाग़ खराब करना है ! जाके कह दे, मैं चाय नहीं पिऊँगा।

मनोहर : [खुशामद के स्वर में] बाबूजी, चाह पी लेतेन तौ बहूजी का चाह पियाय देइत। फिर हम आपन दूसर काम देखी जाय। अरे हाँ, हम हू छुट्टी पाय जाइत।

राकेश : [क्रोध से] इधर से तू जाता है कि नहीं ? कह दे, मैं अभी आ रहा हूँ। एक पल का धीरज नहीं है ! [मनोहर का मुँह लटकाये हुए प्रस्थान] शैतान कहीं का ! आकर सिर पर सवार हो जाता है, न वक्त देखता है, न बात...!

[राकेश पढने में फिर दत्तचित्त होता है। कुछ देर बाद कागज पर लिखते हुए पढ़ता है।] संसार की महान घटनाएँ...छोटी-सी बात से...प्रारंभ...होती हैं...। यह सारी सृष्टि...पहले...एक उल्का के रूप में...प्रारंभ हुई। [गला साफ करके]...अपनी गतिशीलता में...इसे प्रकाश...और अंधकार मिला...। समय ने...इसे...शीतलता प्रदान की...। आज...वही भाप से परिपूर्ण उल्का...ठोस सृष्टि है। [गहरी सांस लेकर एक क्षण ठहरकर] वही सृष्टि...जिसमें...प्रेम और घृणा के...बीच...मानव जीवन के... अनगिनती संसार...बसते और...उजड़ते हैं...। [नेपथ्य में उमा की झुंझलाहट, बर्तनों को जोर से उठाकर रखने की आवाज। फिर कुछ नीचे स्वर में पास आते हुए वाक्य—"यह अच्छा पढ़ना है ! चाय छूट जाय लेकिन किताब हाथ में न छूटे...! इधर चाय ठंडी हुई जा रही है, उधर किताब खत्म होने पर ही नहीं आती...!" अंतिम शब्द रंगमंच पर आकर समाप्त होते हैं। उमा दरवाजे पर आकर ठिठक जाती है। एक क्षण रुककर राकेश पर दृष्टि डालती है। राकेश लिखने में व्यस्त है।]...कौन जानता है कि... उस भाप के जीवन में...इतने संघर्ष...छिपे...हुए हैं...! छोटी-सी...बात... लेकिन...,उसका...परिणाम इतना महान...!

[उमा पैर की ठोकर से आवाज करती है।]

उमा : [व्यंग से] मैं श्रीमान् के कमरे में आ सकती हूँ ?

राकेश : [सिर उठाकर] ओह, उमा...! अरे भई, माफ़ करना···।

उमा : [पुनः व्यंग से] श्रीमान् के पढ़ने में बाधा तो नहीं पड़ जायगी ?

राकेश : [मीठी झुंझलाहट से उठकर] यह 'श्रीमान्'-'श्रीमान्' क्या कह रही हो ? [समझाते हुए] मैं जानता हूँ कि तुम मेरे लिए चाय तैयार किये बैठी हो। मैं अपनी किताब.....

उमा : हाँ हाँ, आप अपनी किताब पढ़िए।

राकेश : [मीठेपन से] देखो उमा, इस तरह व्यंग मत करो। मैं अब किताब कहाँ पढ़ रहा हूँ? देखो, यह बन्द कर दी। [किताब बन्द कर देता है।]

उमा : नहीं, मैं किताब खोल देती हूँ [किताब फिर खोल देती है।] अब पढ़िए, शौक़ से पढ़िए! किताब जब ख़त्म हो जाय, तभी उठिएगा। इधर चाय ठंडी होने दीजिए। किताब के सामने चाय की या मेरी हस्ती ही क्या है!

राकेश : [हंसते हुए] वाह, चाय से तुमने अपने को ख़ूब जोड़ा। सचमुच चाय का जो रंग है...वही रंग.....

उमा : मैं श्रीमान् से कोई मज़ाक सुनने नहीं आई हूँ।

राकेश : फिर वही व्यंग! बड़ी जल्दी नाराजी आ जाती है तुम्हारे मुँह पर! आओ इधर! इतना सुन्दर मुँह और ऐसी व्यंग-भरी बात...! देखो, शीशे में अपना मुँह! [शीशे की ओर संकेत करता है।]

उमा : [रुआसे स्वर में] क्या मेरा मुँह, और क्या मेरी बात!

राकेश : [मनाते हुए] अरे अरे, यह बात क्या है? तुम्हारा मुँह और तुम्हारी बात सब कुछ। अभी तो कोई ऐसी बात हुई नहीं! [यकायक] ओह्, याद आ गया। चाय पीने के लिए तुमने मुझे बुलवाया था। मैं क्या करूं, यह कम्बख्त मन किताब में इतना उलझ गया! [रुककर, उमा में कोई परिवर्तन न देख कर] फेंक दूं इस किताब को?

उमा : नहीं, नहीं। किताब क्यों फेंकें? किताब का ध्यान सबसे बड़ी बात है।

राकेश : [परेशानी से] अब तुम वही बात कहे जाती हो! मैं तुम्हें किस तरह समझाऊँ? बात यह हुई कि इस किताब में एक बात इतने बड़े मार्के की समझाई गई है कि...

उमा : [बीच ही में] वह बात श्रीमान् जो मुझे भी समझा दें...

राकेश : फिर वही 'श्रीमान्'! उफ़्-ओह! अगर टीचर होने के बजाय

मैं व्याकरण का पंडित होता तो पति-पत्नी के बीच से इस 'श्रीमान्' या 'श्रीमती' शब्द को निकाल देता, यानी निषेध कर देता। 'श्रीमान्' या 'श्रीमती' शब्द में एक तरह का आडंबर है, बनावट है, भिन्नता है, दूरी है। पति-पत्नी के बीच न आडंबर है, न बनावट है, न भिन्नता है, न दूरी है। क्यों?

उमा : [अन्यमनस्कता से] न होगी!

राकेश : 'न होगी' नहीं, नहीं है। अच्छा चलो, चाय ठंडी हो रही होगी। वह तो किताब में बात ही इतनी मनोरंजक और सच्ची थी कि क्या कहूँ! देखो, मैंने नोट भी कर लिया है! [कागज दिखलाता है।] लेकिन चलो, चाय ठंडी हो रही होगी।

उमा : ठंडी हो रही होगी या हो गई! अब तो दूसरा पानी गरम करना होगा।

राकेश : अच्छा लाओ, अब मैं पानी गरम करूं। मेरी सज़ा यही है। इसी कम्बख्त काग़ज़ को जलाकर पानी गरम करूंगा, जिस पर मैंने नोट लिखा है।

उमा : चलिए, रहने दीजिए। आप क्या चाय का पानी गरम करेंगे!

राकेश : क्यों, क्या मैं चाय के लिए पानी भी गरम नहीं कर सकता?

उमा : चाय का पानी क्या गरम करेंगे, दिमाग़ ज़रूर गरम कर लेंगे!

राकेश : आज तुम मानोगी नहीं, मालूम होता है। अच्छा, मैं अभी दूसरा पानी गरम करवाता हूँ। [पुकारकर] मनोहर!

[नेपथ्य से] बाबूजी!

राकेश : [उमा से] देखो, अब शान्त रहो, नहीं तो नौकर क्या कहेगा!

[मनोहर का प्रवेश]

मनोहर : बाबूजी! का हुकुम है?

राकेश : देखो, चाय के लिए दूसरा पानी गरम करो। समझे?

मनोहर : चाहै का ना गरमाय देई ?

[उमा को हँसी आ जाती है ।]

राकेश : अरे बेवकूफ़, अपनी अक़्ल रहने दे । दूसरा पानी गरम कर ।

मनोहर : बहुत अच्छा । [जाते हुए] जाय देव ! नुकसान केकर होई !

राकेश : क्या बात है ?

मनोहर : कुछ नहीं बाबूजी, दूसर पानी गरमावै के बरे सोचित है कि कौन बरतन मां गरमावा जाय ।

राकेश : दस-पांच बरतन में गरमायगा ?

मनोहर : नहीं बाबूजी, एकै बरतन मा गरमाय जाई । [प्रस्थान]

राकेश : अजीब नौकर है ! जंगली जानवर !

उमा : आपने ही तो बहुत खोजकर रखा है !

राकेश : अजी, आजकल नौकर कहाँ मिलते हैं । लड़ाई ने ऐसा चौपट किया है कि ईश्वर मिल जाय, लेकिन नौकर नहीं मिलते । यह तो कहो, चीनी-चावल की तरह इनका कंट्रोल नहीं हुआ । नहीं तो ये दो-चार भी देखने को न मिलते । और ये मिलते भी हैं तो इनका दिमाग़ आसमान पर है ।

उमा : इन लोगों के संबंध में भी कुछ नोट ले लीजिए !

राकेश : इन लोगों पर नोट क्या लूँगा ! जिन बातों पर नोट लेता हूँ वे तो चाय का पानी ठंडा कर देती हैं, इन लोगों पर लूंगा तो दिल और दिमाग़ भी ठंडा हो जायगा !

उमा : किन बातों पर नोट लिया है आपने ?

राकेश : जाने दो, क्या रखा है इस नोट लेने में ।

उमा : आख़िर सुनूं भी तो !

राकेश : क्या करोगी सुनकर ?

उमा : देखूँगी, ऐसी कौन सी चीज़ थी जिसने चाय ठंडी कर दी ।

राकेश : क्या उसे देखने से चाय गरम हो जायगी ?

उमा : अब आप भी व्यंग करने लगे ? लाइए मैं ही पढ़ूं। [कागज हाथ में ले लेती है और पास की कुर्सी पर बैठकर पढ़ने की चेष्टा करती है।] संसार की महान घटनाएँ...[लिखावट समझ में न आने से रुक-रुक कर पढ़ती है] छोटी-सी बात से...प्रारंभ...होती हैं। यह सारी दृष्टि...

राकेश : दृष्टि नहीं सृष्टि। लाओ मैं पढ़ दूं [कागज हाथ में लेकर पढता है।] संसार की महान घटनाएँ छोटी-सी बात से प्रारंभ होती हैं। यह सारी सृष्टि पहले एक उल्का के रूप में उत्पन्न हुई। अपनी गतिशीलता में इसे प्रकाश और अन्धकार मिला। समय ने इसे शीतलता प्रदान की। आज वही भाप से परिपूर्ण उल्का ठोस सृष्टि है, जिसमें प्रेम और घृणा के बीच मानव जीवन के अनगिनती संसार बसते और उजड़ते हैं। कौन जानता है कि उस भाप के जीवन में इतने संघर्ष छिपे हुए हैं! छोटी-सी बात, लेकिन उसका परिणाम इतना महान...!

उमा : [बीच ही में] छोटी-सी बात, यानी ?

राकेश : छोटी-सी बात, यानी यह कि कहाँ भाप और कहाँ यह ठोस पृथ्वी !

उमा : तो उससे क्या हुआ ? चीज़ें तो बदला ही करती हैं।

राकेश : [पास की कुर्सी पर बैठकर] यों नहीं बदला करतीं...! अच्छा दूसरा उदाहरण लो। देखो, बड़ का पेड़ है। कितना बड़ा ! उसकी शाखें राक्षसों की बांहों जैसी हैं। उसका तना ऐसा जैसा,कोई लंबा-चौड़ा फ़ौलाद का ड्रम हो। उसकी जटाएँ ऐसी, कि जादूगरनी के बालों जैसी, जो बाद में चलकर खुद एक पेड़ हो जाएँ ! अरे तुमने यूनीवर्सिटी के सिनेटहॉल के सामने देखा होगा टैनिस-कोर्ट के लॉन में ! उसकी एक जटा तो पेड़ बनने जा रही है। 'कोट रामी टाट आरबोरीज़।'

उमा : यह कौन-सा कोट है ? बड़ के पेड़ का कोट से क्या संबंध ?

राकेश : [हँसकर] अरे, यह 'कोट' पहनने का कोट नहीं है। यह लैटिन भाषा का एक वाक्य है : 'कोट रामी टाट आरबोरीज'—

जितनी शाखें उतने पेड़। यानी जितने लड़के यूनीवर्सिटी से निकलेंगे वे अपने रूप में एक पूरी संस्था हो जायंगे। खैर, जाने दो इस बात को। यह तो इलाहाबाद यूनीवर्सिटी का मॉटो है। मैं तो बड़ के पेड़ के बार में कह रहा था। क्या कह रहा था ?

उमा : यही कि उसकी शाखें जादूगरनी के बालों जैसी...

राकेश : हाँ, ये शाखें भी कुछ समय बाद पेड़ हो जाती हैं। तो यह इतना लंबा-चौड़ा बड़ का पेड़ लाखों टन का होता है, और उसका बीज जानती हो कितना होता है ? राई के बराबर। इतना-सा। [उँगली से दिखलाकर] फूँक दो तो उड़ जाय ! लेकिन उससे पेड़ कितना बड़ा होता है ! उसके नीचे सैकड़ों हाथी बांध लो। इसी तरह छोटी से छोटी बात से बड़ी से बड़ी घटना हो जाती है। कहाँ उड़ती हुई भाप, और कहाँ यह भारी भरकम पृथ्वी ! जिस पर हिमालय जैसे न जाने कितने पहाड़ खड़े हुए हैं !

उमा : लेकिन बात इससे उल्टी भी हो सकती है।

राकेश : उल्टी कैसे ?

उमा : उल्टी ऐसे—[सोचते हुए] अब यही ले लीजिए। जब हम लोगों की शादी...यानी शादी हुई थी तो हज़ारों आदमी इकट्ठे हुए थे। इतनी रोशनी, इतना जल्सा, इतना नाच, इतना 'एंट–होम', इतने आदमी ! लेकिन आखिर में रहा क्या ? रह गए हम और आप। बस—[राकेश और अपने को उंगली से छूकर] एक और दो। हज़ार आदमियों में सिर्फ़ दो रह गए।

राकेश : [हँसकर] बात तो तुमने पते की कही, लेकिन हमारी और तुम्हारी बातें उन आदमियों की संख्या से हज़ारगुनी ज़्यादा हैं, यह क्यों भूल जाती हो ? इन बातों की कोई संख्या ही नहीं। अच्छा जाने दो, दूसरा उदाहरण लो। [कुछ सोचता है, फिर उठकर दीवाल की ओर देखता हुआ] यह तस्वीर ही लो। [पंचवटी के चित्र की ओर संकेत करता है।] यह तस्वीर किसकी है ?

उमा : [सरलता से] यह तस्वीर पंचवटी में राम और सीता की है।

राकेश : इसमें क्या है ?

उमा : इसमें क्या है ? सीताजी हरिण की ओर संकेत कर रही हैं और श्री रामजी उसकी ओर देख रहे हैं।

राकेश : सीताजी हरिण की ओर क्यों संकेत कर रही हैं ?

उमा : [खीझकर] अब इसमें कौन बात पूछनी है ? रामायण में लिखा है कि मारीच–राक्षस कपट–मृग बन कर आया था। उसकी छाल इतनी अच्छी थी कि सीताजी ने श्री रामचन्द्रजी से उसे मारकर उसकी छाल लाने के लिए कहा।

राकेश : [इत्मीनान से] ठीक है, बात तो इतनी-सी ही न है कि सीताजी ने रामचन्द्रजी से मृग मारने के लिए कहा। और उसका परिणाम क्या हुआ? उसका परिणाम हुआ सीता-हरण ! राम जैसे वीर पुरुष और मर्यादा-पुरुषोत्तम का रुदन और क्रोध, और अन्त में लाखों राक्षसों की मृत्यु ! सोने की लंका का विनाश ! रावण जैसे पराक्रमी योद्धा का पतन ! कितना भयानक परिणाम ! बात न-कुछ, छोटी-सी...

उमा : स्त्री के पीछे यह सब कुछ होता है।

राकेश : ठीक है, लेकिन समझ लो कि रामचन्द्रजी मृग मारने के लिए न जाते, तो सीता-हरण होता ही नहीं। राम को इतनी विपत्ति न झेलनी पड़ती। वे आराम से पंचवटी में चौदह वर्ष बिताकर अयोध्या लौट आते। कहीं कुछ न होता।

उमा : होता कैसे नहीं, भाग्य की जो बात है !

राकेश : इसमें भाग्य की क्या बात ? श्री रामचन्द्रजी कह देते कि सीते आज म थका हुआ हूँ, कल मार दूँगा। बात टल जाती और श्री रामचन्द्रजी को इतनी मुसीबतों का सामना न करना पड़ता।

उमा : कह कैसे देते ?

राकेश : क्यों ? बराबर कह सकते थे। जंगल-जंगल घूमते उनके पैरों में कांटे गड़ गए होंगे। कह देते, मेरे पैर में कांटे गड़ गए हैं, चलने में कष्ट होता है; आज काँटा निकाल दो, कल तुम्हारे लिए देख के इससे अच्छा मृग मार दूँगा !

उमा : श्री रामचन्द्रजी मर्यादा-पुरुषोत्तम थे। आपकी तरह बहानेबाजी थोड़े ही कर सकते थे ?

राकेश : क्यों ? मैंने कब बहानेबाज़ी की ?

उमा : [तमककर] पिछले हफ्ते ही की थी, जब मैंने आपसे सिनेमा जाने के लिए कहा था ! आपने कहा, रुपये खत्म हो गए। जब मैंने चुपके से रात में आपके पॉकेट की तलाशी ली तो उसमें दस रुपये का नोट निकला। मैंने उसे लिया नहीं, यही बहुत है।

राकेश : वह रुपया मेरा कहाँ था, वह तो आफ़िस का था।

उमा : तो आफ़िस का रुपया आप अपनी जेब में रखते हैं ?

राकेश : जेब में क्यों रक्खूंगा, जेल न चला जाऊंगा ? घर चलते वक्त चन्दे का रुपया आया था। वक्त ज़्यादा हो गया था। मैं उसे जमा नहीं कर पाया। दूसरे रोज़ मैंने उसे आफ़िस में जमा कर दिया। मैंने कभी तुमसे बहानेबाजी की ही नहीं।

उमा : [लापरवाही से] खैर, न की होगी।

राकेश : और अगर मैंने कभी बहानेबाज़ी भी की, तो मैं श्री रामचन्द्रजी तो हूँ नहीं, जिन्होंने अपने जीवन भर बहानेबाज़ी नहीं की। मारीच-मृग मारने में क्यों बहानेबाज़ी करते ? सच बात हो सकती थी कि काँटों के गड़ जाने से उनके पैरों में दर्द होता। लेकिन खैर, उन्होंने यह बात नहीं कही, अपनी पत्नी के छोटे-से अनुरोध से उन्होंने भयानक दुःख भोगा। पैर की अपेक्षा यदि उनके हृदय में सैकड़ों काँटे गड़ जाते तब भी उन्हें इतना कष्ट न होता। तभी तो लेखक ने कहा है कि एक छोटी-सी बात कितने भयानक परिणाम उत्पन्न करती है...! खैर चलो, चाय का पानी गरम हो गया होगा।

उमा : क्या गरम हो गया होगा ! न खुद चाय पी और न मुझे पीने दी।

राकेश : तो तुम चाय पी लेतीं। बाद में मैं पी लेता। यह जरूरी तो है नहीं कि अगर मैं चाय न पिऊं तो तुम भी न पियो।

उमा : आप क्या जानें स्त्री के हृदय की बात।

राकेश : हाँ, स्त्री के हृदय की बात जानना तो बहुत मुश्किल है। कल मदन भी यही कह रहा था।

उमा : [तीखे स्वर से, उठकर] आपके मदन को क्या हक़ है मेरे संबंध में कुछ कहने का ? आप अपने दोस्तों को मना कर दीजिए कि वे मेरे संबंध में कुछ न कहा करें।

राकेश : मदन तुम्हारे संबंध में कुछ नहीं कह रहा था। वह अपनी स्त्री के संबंध में कह रहा था। उस दिन जब हम तीनों चाय पी रहे थे...

उमा : [चौंककर] हम तीनों ? यानी ?

राकेश : [सरलता से] हम तीनों—यानी मदन, उसकी स्त्री और मैं।

उमा : अच्छा, मदन की स्त्री आपके साथ चाय भी पी लिया करती है !

राकेश : तो इसमें क्या बात हुई ?

उमा : कोई बात नहीं हुई ! कभी मदन मौजूद भी न रहे तो उनकी स्त्री और आप तो चाय पी ही सकते हैं !

राकेश : ऐसा अवसर तो कभी आया नहीं, और न मैं किसी स्त्री से अधिक मेल-जोल ही रखता हूँ।

उमा : आप नहीं रखते तो स्त्रियाँ तो मेल-जोल रखती हैं !

राकेश : तो उसमें क्या हानि है ? सामाजिक शिष्टता भी तो कोई चीज है !

उमा : अच्छी आपकी सामाजिक शिष्टता है ! मैंने तो कभी किसी पुरुष के साथ चाय नहीं पी।

राकेश : तो क्या मैं पुरुष नहीं हूँ ?

उमा : मैं आपकी बात नहीं कहती। आपके सिवाय मैंने किसी ग़ैर पुरुष के साथ चाय नहीं पी।

राकेश : पीने में कोई आपत्ति तो नहीं है ! तुम्हारी इच्छा ही नहीं होती कि दूसरों के साथ चाय पी जाय।

उमा : मेरी अपनी इच्छा है, और वह स्वतन्त्र है । किसी को कुछ कहने का अधिकार नहीं है।

राकेश : मुझे भी नहीं ?

उमा : आपको हो चाहे न हो। आप दूसरों के साथ चाय पीते हैं तो मेरे साथ चाय पीने का अवकाश कहाँ होगा ! इसीलिए चाय ठंडी हो जाया करती है !

राकेश : कैसी बातें करती हो उमा ! मैं किस-किस के साथ चाय पिया करता हूँ ! कब-कब मैंने मदन की स्त्री के साथ चाय पी है ? और फिर तुम मदन की स्त्री के साथ अन्याय करती हो !

उमा : मदन की स्त्री का बड़ा पक्ष ले रहे हैं आप !

राकेश : पक्ष नहीं ले रहा हूँ, न्याय की बात कह रहा हूँ।

उमा : दूसरों की स्त्रियों के साथ न्याय किया कीजिए। मेरे साथ न्याय क्यों करने लगे ? कहाँ-कहाँ की शैतान स्त्रियाँ.....

राकेश : उमा, जबान क़ाबू में रखो।

उमा : अच्छा, अब दूसरों की स्त्रियों के पीछे मुझे गालियाँ भी सुननी पड़ेंगी ? [गला भर आता है।] यही मेरी क़िस्मत है !

राकेश : क़िस्मत नहीं है। मैं कहता हूँ, ढंग से बातें करो।

उमा : [करुण स्वर से] तुम मेरा अपमान करते जाओ और मैं ढंग से बातें करूं ? मैं यहाँ से चली जाऊँ तो ढंग से बातें करनेवाली आपको बहुत मिल जायँगी। [रुआंसे स्वर में] अच्छी बात है, मैं यहाँ से चली जाऊँगी, जल्दी ही चली जाऊँगी !

राकेश : [कुछ कोमल पड़ते हुए स्वर में] तुम क्यों चली जाओगी ? जाये तुम्हारी बला ! तुमने किसी का लिया क्या है ?

उमा : मेरी क़िस्मत में ही लिखा हुआ है ! कोई क्या करे ?

राकेश : क्या लिखा हुआ है, कि तुम घर से चली जाओ? फिर इस घर को भी आग लगा जाओ।

उमा : आग लग जायगी तो स्त्रियों का स्वागत कहाँ होगा?

राकेश : स्वागत होता है सिर्फ़ तुम्हारे कारण। आज तुम चली जाओ, कल से स्त्री क्या, स्त्री की छाया भी यहाँ नहीं दीख पड़ेगी।

उमा : ये सब कहने की बातें हैं!

राकेश : तुम्हें विश्वास न हो तो मैं क्या करूँ! इसका मेरे पास कोई इलाज नहीं। लेकिन मैं यह दावे के साथ कहता हूँ कि अगर तुम यहाँ से एक रोज़ के लिए भी चली जाओ, तो यह सारी गृहस्थी एक दिन में चौपट हो जायगी।

उमा : सम्हालनेवाली बहुत मिल जायँगी।

राकेश : जिनके यहाँ सम्हालनेवाली इकट्ठी होती हैं, उनकी गृहस्थी तो और जल्दी चौपट होती है! तुम्हारी-जैसी स्त्री मिलना कुछ कम क़िस्मत की बात नहीं होती।

उमा : आप अपनी क़िस्मत बड़ी बनाइए और मुझे रोने के लिए छोड़ दीजिए।

राकेश : रोने के लिए क्यों छोड़ूं? अगर रोने में तुम्हारा विश्वास होता तो तुम इस कुशन पर 'गुडलक' बना ही नहीं सकती थीं, [कुशन हाथ में ले लेता है।] कितना अच्छा 'गुड-लक' कढ़ा हुआ है! तुम कितना अच्छा काम जानती हो, उमा! अच्छा, अगर यह काम मैं सीखना चाहूँ तो तुम मुझे कितने दिनों में सिखला सकती हो?

उमा : [कुछ मुस्कुराहट ओठों पर रोकते हुए भी बिखर जाती है।] बस, अब ऐसी बातें करने लगे! पहले छेड़ देते हैं, बाद में मीठे बन जाते हैं।

राकेश : कहीं इस मीठेपन पर 'कंट्रोल' तो न हो जायगा?

उमा : कंट्रोल भले ही हो जाय, लेकिन आपके ब्लैक-मारकेट पर तो किसी का बस नहीं है? [दोनों हँस पड़ते हैं।]

राकेश : लेकिन बात चाहे जो हो, तुमने गृहस्थी सम्हाली खूब है ! हर एक चीज़ का एक अपना ढंग है। ढंग का खाना, ढंग का पीना, ढंग का रहना। परसों मदन ही कह रहा था कि उमा जी की कपड़े की पसंद लाजवाब है! ड्राइंगरूम की सजावट में कितना 'टेस्ट' है, यहाँ तक कि दरवाज़ों के परदे भी दीवाल के रंग से मिला दिए हैं।

उमा : चलिए, रहने दीजिए ये बातें ! दीवाल का रंग इस साल अच्छा आ ही नहीं सका !

राकेश : फिर भी तारीफ़ के लायक तो परदों का चुनाव तुमने किया ही।

उमा : उस पर भी मुझे आपकी बातें सुननी पड़ीं !

राकेश : नहीं, वह मेरी ग़लती थी। वह तो मैं बाहर से ग़ुस्से में भरा हुआ आया था, उसी समय परदों की बात हुई, तो मुझे कुछ कह आया। लेकिन मैं सच कहता हूँ, और उस रोज़ मदन की स्त्री ने भी कहा था, कि उमा जी ने सारी गृहस्थी को इस प्रकार सम्हाला है कि घर में लक्ष्मी बरस रही है।

उमा : मुझे किसी से अपनी तारीफ़ नहीं सुननी! मेरे संबंध में कोई बात न करे।

राकेश : क्यों न करे? अच्छी खासी स्त्री हो ! मैं तो चाहता हूँ कि सारी दुनिया तुम्हारी तारीफ़ करे। [सहसा] अरे हाँ, आज सुबह मदन की स्त्री का पत्र आया था।

उमा : क्या अब पत्र आने भी शुरू हो गए ?

राकेश : तुम तो ज़रा-सी बात में बुरा मान जाती हो। अरे, पत्र मेरे पास आया है ज़रूर, लेकिन तुम्हारे नाम से है।

उमा : मुझे किसी का पत्र नहीं पढ़ना। पढ़ लीजिए आप ही।

राकेश : मैं तुम्हारे नाम का पत्र क्यों पढ़ूँ? खासकर जब एक स्त्री ने भेजा है।

उमा : न पढ़िए तो जला दीजिए।

राकेश : मैं क्यों जलाऊँ ? जलाना हो तो तुम्हीं जला देना पढ़ने के बाद। संभव है, मेरे संबंध में कोई बात लिखी हो !

उमा : क्या ऐसी बात भी हो सकती है ?

राकेश : यह मैं क्या जानूँ !

उमा : अच्छा लाइए, देखूँ वह पत्र।

[राकेश टेबिल के दराज से पत्र निकाल कर देता है। उमा शीघ्रता से खोल कर पढ़ती है। दो क्षण बाद उसके ओठों पर मुस्कुराहट आ जाती है।]

राकेश : अब यह कौन-सी मिठाई है ? क्या इस पर कोई कंट्रोल नहीं हो सकता ?

उमा : [पत्र पर से अपनी दृष्टि उठाकर हसते हुए] इस पर 'कंट्रोल' हो ही नहीं सकता। और अगर आप 'कंट्रोल' का नाम लेंगे तो आपको सज़ा मिलेगी।

राकेश : न्याय के नाम पर सज़ा ?

उमा : हाँ, सज़ा।

राकेश : क्या सज़ा होगी ?

उमा : आपके हाथ बाँध दिए जायँगे।

राकेश : [हाथ आगे बढ़ाते हुए] अच्छी बात है, बाँध दो मेरे हाथ।

उमा : मैं क्यों बाँधूँगी ? हाथ आपके बाँधेगी मदन की स्त्री, श्रीमती कमला देवी !

राकेश : [आश्चर्य से] श्रीमती कमला देवी ?

उमा : [प्रसन्नता से] हाँ, वही श्रीमती कमला देवी। कल रक्षाबंधन है, वे कल आपके हाथों में राखी बाँधेंगी।

राकेश : वाह, फिर यह सज़ा कहाँ रही ! यह तो वरदान है। बहन कमला देवी की ओर से रक्षा-बंधन पाना किसी भी भाई के लिए अभिमान की बात हो सकती है !

उमा : मैं श्रीमती कमला देवी से क्षमा माँगूँगी कि मैंने व्यर्थ ही उनको दोष दिया !

राकेश : [हँसकर] और मुझसे क्षमा माँगने की आवश्यकता नहीं है ?

उमा : आपको तो मैं अभी गरम चाय पिलाए देती हूँ ! [पुकारकर] मनोहर ! [नेपथ्य से] आए सरकार !

राकेश : मैं सिर्फ़ चाय से नहीं मान सकता ।

उमा : मिठाई भी मँगवाती हूँ ।

राकेश : उसकी कमी मैं तुम्हारी बातों से पूरी कर लेता हूँ !

[मनोहर का प्रवेश]

मनोहर : जी सरकार !

उमा : चाय का पानी गरम हो गया ?

मनोहर : होय गवा, सरकार !

उमा : फिर खबर क्यों नहीं दी ?

मनोहर : सरकार, बाबू ते बड़ा डिर लागत है । ए कहि देयँ [राकेश की आवाज और भाषा में बोलने का प्रयत्न करता हुआ] ' सिर खावत हो क्यों, मनोहर ? '

उमा : [हँसकर] ख़ैर, इस समय सिर खाने की बात नहीं है, मिठाई खाने की बात है । मिठाई का भी इन्तज़ाम कर ।

मनोहर : बहुत अच्छा सरकार ! ऐसन बात होय से भल नीक लागत है ।

उमा : अच्छा जा ! [मनोहर का प्रस्थान । राकेश से] अच्छा, अब चलिए चाय पी लीजिए, अब कहीं फिर ठंडी न हो जाय ?

राकेश : अब क्या ठंडी होगी ? लेकिन मेरी बात तो वैसी ही सच है ।

उमा : वह क्या ?

राकेश : वह यह कि छोटी-सी बात से कितने भयंकर परिणाम होते हैं !

उमा : चाय की बात म फिर वही बात आ गई ? अभी ऐसी कौन-सी बात हो गई कि वह फिर सच निकल गई ?

राकेश : बहुत बड़ी बात हो गई ! बहिन श्रीमती कमला देवी के सबंध में तुम्हारे छोटे-से संदेह से जानती हो क्या होता ? तुम नाराज़ होकर यहाँ से चली जातीं। मेरी सारी गृहस्थी चौपट हो जाती। मैं सब काम छोड़ देता ! शायद घर से निकल जाता ! और इसी तरह मेरी सारी जिन्दगी तबाह हो जाती !

उमा : लेकिन म गई तो नहीं।

राकेश : तुम नहीं गई तो वह भी एक छोटी-सी बात से। एक छोटे-से पत्र से, जिससे तुम्हें मालूम हुआ कि हमारा और उनका व्यवहार भाई-बहन का है। एक छोटे-से पत्र ने उजड़ती हुई गृहस्थी को बचा लिया !

उमा : अच्छी बात है, मान लेती हूँ आपका सिद्धान्त।

राकेश : तो फिर एक छोटी-सी हँसी हँस दो, तो [दर्शकों की ओर देखकर] सारा संसार खुश हो जाय !

[उमा कुछ मुस्कुरा देती है, और धीरे-धीरे परदा गिरता है।]

वैवाहिक दृष्टिकोण से—

आँखों का आकाश

पात्र और परिस्थितियाँ

अविनाश : एक सुंदर नवयुवक जिसका विवाह तीन महीने पहले सुलेखा से हुआ है।

सुलेखा : एक सुंदर नवयुवती जिसका विवाह तीन महीने पहले अविनाश से हुआ है।

स्थान : इलाहाबाद में टैगोर टाउन।

काल : यूनीवर्सिटी कनवोकेशन के एक दिन पूर्व की संध्या।

[विवाह के अनंतर प्रेम और आत्मीयता की उष्णता से सजग एक कमरा। कमरे की चमक-दमक में दाम्पत्य सुख की किरण अव्यक्त होकर भी सभी वस्तुओं पर आलोक डाल रही है। रेशम के परदे। दीवाल पर राधा-कृष्ण और रोमियो-जूलियट के मिलन-चित्र, एवं प्रकृति के सुंदर दृश्य हैं। फर्श पर कालीन बिछा हुआ है। एक नये डिजाइन का ड्राइंग रूम। सूट रेशमी कवर से सजा हुआ कमरे के बीचोबीच में है। सूट के बीच में एक पालिश की हुई बरमा टीक की टीप्वाय है, जिस पर गुलाब और चमेली के फूलों का फूलदान सजा हुआ है। एक बड़ी घड़ी जिसमें शाम के सात बजे हैं। उसके नीचे कैलेंडर है जिसमें सितंबर मास का पृष्ठ है।

इस समय कमरे में अविनाश और सुलेखा हैं। अविनाश सिल्क का कुरता और धोती पहने हुए है। बिजली के प्रकाश में अविनाश का कुरता उदय होते हुए सूर्य की किरणों की तरह चमक रहा है। बाल ग्लिसरीन से सँवारे हुए और वस्त्र ऑट्टो आव रोज़ेज की सुगंधि लिए हुए। सुलेखा आबेखां की साड़ी और नीले रंग का ब्लाऊज पहने हुए है। बालों में लहर और सुगंधि जो संभवतः जैसमिन की है। हल्के और नये डिजाइन के आभूषण जिनमें मूल्य की अपेक्षा शोभा अधिक है। नेत्रों में श्याम-रेखा और माथे में हल्का कुंकुम बिंदु। मुख पर परिव्याप्त स्मिति और कपोल-कूप। हाथों में एक रेशमी चूड़ी जो ओपल की भांति अनेक रंगों की किरणें फेंक सकती है।

दोनों का विवाह हुए अभी तीन महीने हुए हैं और दोनों विवाह सुख की नींद से आलसमय जागरण की अवस्था में हैं। दोनों के स्वप्न और सत्य फूल और कांटों पर झूलते हुए चले जा रहे हैं।

सुलेखा सोफा पर बैठी हुई मोजा बुन रही है। उसकी दृष्टि स्थिर और नीचे है और अविनाश कमरे में कुछ गुनगुनाता हुआ टहल रहा है।]

अविनाश : [स्वर से टहलते हुए] **तुम्हारी आँखो का आकाश;**
सरल आँखों का नीलाकाश,
खो गया मेरा खग अनजान.....!

सुलेखा : [मोजा बुनते हुए] क्या खो गया जी ?

अविनाश : [स्वर से, जरा जोर से] खो...गया...मेरा...खग...अनजान!
[सुलेखा मौन है और सुनने में लीन है ।]

अविनाश : [अभिनय करते हुए] कवि कहता है कि मेरा मन रूपी पक्षी खो गया ।

सुलेखा : अच्छा ! पक्षी खो गया ! कहाँ ?

अविनाश : आँखों के नीले आकाश में ?

सुलेखा : आँखों में भी नीला आकाश है ?

अविनाश : आँखों में श्याम पुतली है न ? वह इतनी सुंदर और व्यापक है कि उसमें मन रूपी पक्षी खो गया !

सुलेखा : उफ़् ओह, यह आँखों की पुतली की लंबाई-चौड़ाई है ! इन कवियों की लंबी-चौड़ी बातों को क्या कहूँ ! लेकिन आँखों की पुतली तो काली होती है, नीली नहीं ।

अविनाश : नीली भी हो सकती है ।

सुलेखा : नीली तो अंगरेज़ लड़कियों की होती है । अच्छा, कवि यहाँ किसी अंगरेज तरुणी ही को लक्ष्य करके कह रहा है ।

अविनाश : संभव है !

सुलेखा : संभव क्या, यही है । अच्छा ये कवि महोदय कौन हैं ?

अविनाश : कवि ? कवि पं. सुमित्रानंदन पंत हैं ।

सुलेखा : पंडित सुमित्रानंदन पंत ! अच्छा, अच्छा यह बतलाइए, ये कवि वे तो नहीं हैं जिनके हम लोगों की तरह लंबे-लंबे बाल हैं ?

अविनाश : हाँ, वही । लेकिन क्या तुमने उन्हें कभी देखा है ?

सुलेखा : देखा तो नहीं। किसी पुस्तक में उनकी तसवीर अवश्य देखी है। बड़ी-बड़ी आँखें हैं, लंबी नाक है, पतले ओंठ हैं।

अविनाश : तुमने तो बड़े ध्यान से उनकी तसवीर देखी है।

सुलेखा : सुना था वे बड़े भारी कवि हैं। देखो न, तुम्हें भी तो उनकी कविताएँ याद हैं।

अविनाश : हाँ, वे हमारे होस्टल में एक बार आए थे। मुझसे उनकी अच्छी जान-पहिचान हो गई है। उन्होंने यही कविता सुनाई थी, बड़े स्वर से।

सुलेखा : अच्छा और याद तो बताओ इनका विवाह हुआ, या नहीं?

अविनाश : अपना विवाह हो जाने पर तुम्हें सब के विवाह की चिंता है!

सुलेखा : [लाजन होकर] नहीं, यह बात नहीं है। यों ही पूछती हूँ कि उनका विवाह हुआ या नहीं।

अविनाश : सुनता हूँ, नहीं हुआ।

सुलेखा : क्यों?

अविनाश : अब मैं यह क्या जानूं! अपनी-अपनी इच्छा है, नहीं किया होगा।

सुलेखा : हैं तो बड़े सुंदर!

अविनाश : हाँ, कोई भी युवती इनसे विवाह कर सकती थी।

सुलेखा : युवती या युवक?

अविनाश : [कौतूहल से] युवक!

सुलेखा : हाँ, जब मैंने पहले इनकी तसवीर देखी तो ज्ञात हुआ कि कोई आजकल के फ़ैशन की लड़की है। बाद में जब नीचे नाम पढ़ा तो मालूम हुआ कि कवि महोदय हैं।

अविनाश : [किंचित हँसी के साथ] ठहरो, मैं पंडित सुमित्रानंदन को यह लिखूँगा।

सुलेखा : मेरा उनसे परिचय ही नहीं, वे मुझ से कहेंगे ही क्या ?

अविनाश : क्या ? तुम उनके एक परिचित पाठक की पत्नी हो, यही मैं उन्हें लिख दूँगा

सुलेखा : लिख दो। एक तो वे मुझ पर नाराज़ होंगे नहीं। यह तो एक सरल विनोद है। और अगर मुझ पर नाराज़ होने के लिए वे यहाँ आए भी तो म उन्हें चाय पिला दूँगी। बस, वे प्रसन्न हो जावेंगे।

अविनाश : [प्रेम से] तुम बहुत अच्छी हो, सुलेखा ! कोई तुम से नाराज़ रह ही नहीं सकता

सुलेखा : [मुंह बनाकर] चलो, अब यह प्रशंसा चली।

अविनाश : नहीं सुलेखा, मैं अपने हृदय की बात कहता हूँ। मुझी को देखो, जब से हम लोगों का विवाह हुआ है तब से एक बार भी हम लोगों में कहीं अनबन हुई है ?

सुलेखा : मैं रही ही यहाँ कितने दिन हूँ ?

अविनाश : यह बात दूसरी है ; लेकिन उलझनेवाली तबियत का तो एक दिन में पता चल जाता है।

सुलेखा : यह बात तो सही है।

अविनाश : फिर क्यों न कहूँ कि तुम बहुत अच्छी हो ? और फिर तुम मुझे समझती हो और मैं तुम्हें समझता हूँ। [कुर्सी पर बैठ जाता है। उसी स्वर में] जो लोग अपने गृहस्थाश्रम की शिकायतें करते हैं, वे बेवकूफ़ हैं। मिलकर रहना नहीं जानते। हम लोगों की तरह रहें तो समझें कि जीवन की फुलवारी में फूल ही फूल हैं, काँटा एक भी नहीं !

सुलेखा : सच है।

अविनाश : सच है न ?

सुलेखा : लेकिन यह तुम्हारे ही स्वभाव का परिणाम है कि मेरा मन इतना प्रेममय हो गया है कि वह काँटों में भी फूल की कल्पना कर लेता है।

अविनाश : नहीं, यह तो तुम्हारे हृदय की उदारता है कि तुम ऐसा कहती हो। पर सचमुच हम लोगों का जीवन ऐसा ही है जैसा इस फूलदान में लगे हुए चमेली और गुलाब के फूल का, जिनके एक-एक काँटे बीनकर अलग कर दिए गए हैं।

सुलेखा : यह हम लोगों का भाग्य है।

अविनाश : नहीं सुलेखा, वास्तव में तुम ऐसी सुलेखा हो जिसने मेरे जीवन का चित्र इतना सुखमय खींच दिया है!

सुलेखा : ओह! [बुनना छोड़कर] आप से यह बात सुनकर मैं कितनी सुखी हूँ!

अविनाश : मैं तो यह कहना चाहता हूँ सुलेखा, कि जब से विवाह जैसा संबंध संसार में स्थापित हुआ, तब से हम लोगों से अधिक सुखी शायद कोई भी नहीं होगा!

सुलेखा : तुम कितने सुंदर हो अविनाश! जैसे मेरा सुख साकार होकर मेरे सामने है और मैं उसकी आँखों से आँखें मिलाकर कह रही हूँ कि तुम मेरे हो और मैं तुम्हारी हूँ।

अविनाश : और सुलेखा, यदि तुम मुझसे पूछो तो मैं कहूँ कि विद्यार्थी-जीवन के मेरे सारे स्वप्न जैसे तुम्हारे मधुर रूप में चित्रित हो गए हैं और मैं कह रहा हूँ कि संसार में किसी के स्वप्न सच्चे नहीं होते, किंतु केवल मेरे ही स्वप्न सच्चे हुए हैं। अथवा मैं यह कहूँ कि मेरा सत्य ही मेरे विद्यार्थी-जीवन में स्वप्न बनकर खेल रहा था, आज वह तुम्हें पाकर अपने असली रूप में आ गया।

सुलेखा : अविनाश, अगर कोई लहर से पूछे कि तूने तट को छूकर कितना सुख पाया तो वह मेरी ओर संकेत कर देगी।

अविनाश : ओह, तुम कितनी अच्छी कल्पना कर सकती हो! सुलेखा, यदि तुम चाहो तो कवि हो जाओ।

सुलेखा : जिस तरह भाषा भावों को पाकर कविता बन जाती है, उसी

तरह तुम्हें पाकर मैं धन्य हो गई !

अविनाश : मैं फिर कहता हूँ, तुम कविता बहुत अच्छी लिख सकती हो, सुलेखा ! प्रयत्न करके देखो। तब प्रत्येक कवि-सम्मेलन में मैं तुम्हारे साथ जाकर कितना गौरवान्वित होऊँगा ! लोग मेरी ओर संकेत करके कहेंगे कि ये कवयित्री सुलेखा के पति हैं। सुलेखा, तुम मेरे सौभाग्य का अनुमान नहीं कर सकतीं। मैं तुम्हारी कविता की नोट-बुक अपने ही पास रक्खूँगा और जब तुम कविता पढ़ते समय संकेत से अपनी नोट-बुक मुझ से माँगोगी तब मैं अपने चारों ओर देखकर लोगों की आँखों से आँखें मिलाकर मौन भाषा में कहूँगा कि तुम लोग मेरी ही पत्नी की कविता सुनने के लिए इतने उत्सुक हो और तब मैं तुम्हारी ओर कविता की नोट-बुक बढ़ा दूँगा। उस समय तुम अनुमान कर सकोगी कि वसंत भी कोकिल के स्वर से उतना सुखी नहीं होगा जितना मैं तुम्हारी कविता सुनकर।

सुलेखा : [मुस्कुराकर] तुम मुझे आदर देते हो अविनाश ! अन्यथा जो कुछ भी मैं होऊँगी वह तुम्हारे ही गुणों से शक्ति प्राप्त कर के हो सकूंगी। तुम मुझ अब लज्जित कर रहे हो, अविनाश !

अविनाश : नहीं सुलेखा, तुम वास्तव में देवी हो। तुम्हें पाकर मैं धन्य हूँ ! तुम्हारे ही गुणों से मेरा जीवन सुखी होगा। देखो, हम लोगों का विवाह हुए तीन महीने हुए। यह सितंबर है। [कैलेंडर की ओर दृष्टि] हम लोगों का विवाह जुलाई में हुआ था। [सुलेखा सिर हिलाती है।] तब से हम लोगों में कोई मन बिगाड़नेवाला विवाद नहीं हुआ, कोई लड़ाई नहीं हुई। प्रायः विवाद और संघर्ष इन्हीं तीन महीनों में हुआ करते हैं और वह समय अब निकल गया और हम लोग एक दूसरे के अब भी उतने ही समीप हैं जितने विवाह के दूसरे दिन थे।

सुलेखा : उससे भी अधिक, अविनाश !

अविनाश : हाँ, सचमुच उससे भी अधिक !

सुलेखा : ओह..... !

अविनाश : [चौंककर] क्यों यह ठंडी साँस कैसी ? क्या बात है ?

सुलेखा : ऐसी ही ।

अविनाश : [उद्विग्नता से] तो जल्दी बतलाओ, जल्दी बतलाओ !

सुलेखा : [ठंडी सांस लेकर मुस्कुराते हुए] तुम बहुत दूर बैठे हो ।

अविनाश : [हँसते हुए] ओह, तुम बहुत नटखट हो, मैं तो घबड़ा गया । [पास आकर बैठता है ।] अब तो ठीक है ?

सुलेखा : हाँ, अब ठीक है ।

अविनाश : सुलेखा, हम लोगों में कभी संघर्ष नहीं होगा ?

सुलेखा : कभी नहीं । बात यह है कि संघर्ष तो तब होता है जब तुम्हारी कोई बात मुझे अच्छी न लगे और मैं उसे पत्थर की तरह उछालकर तुम्हारे ही पास लौटा दूँ या मुझे मेरी कोई बात अच्छी न लगे और तुम मेरा तिरस्कार कर दो । लेकिन जब तुम्हारी बात मुझे काँटे की तरह लगते हुए भी मेरे हृदय में फूल की तरह समा जाय तो फिर विवाद का कोई अवसर ही नहीं आ सकता ।

अविनाश : तुम कितनी अच्छी तरह से परिस्थितियों को समझती हो सुलेखा ! हम लोगों के वैवाहिक जीवन का सूत्र कितनी दृढ़ता से बँधा हुआ है ! राधा-कृष्ण की तरह या रोमियो-जूलियट की तरह ।

[चित्रों की ओर संकेत करता है ।]

सुलेखा : अनेक विपत्तियों से जर्जर होने पर भी प्रेम वैसा ही बना रहा, बल्कि और भी बढ़ गया । यही प्रेम तो जीवन की सब से बड़ी संपत्ति है ।

अविनाश : सुलेखा, तुम्हारे प्रत्येक शब्द में जैसे एक तारा जगमगा उठता है और जब तुम देर तक मुझ से बातें करती हो तो जैसे मेरे चारों ओर एक आकाश-गंगा सी बहने लगती है !

सुलेखा : और बीच बैठे हुए तुम कौन हो ? चंद्रमा ?

अविनाश : और तुम चांदनी !

सुलेखा : तुम बहुत सुंदर हो अविनाश !

अविनाश : तुम बहुत कोमल-स्वभाव हो सुलेखा ! हम लोग अलग होकर भी मिले रहेंगे। लहरों की तरह अलग-अलग होकर भी साथ ही साथ बहते रहेंगे। हम और तुम और तुम और हम। क्यों सुलेखा, क्या हम और तुम एक दूसरे से कभी रुष्ट हो सकते हैं ?

सुलेखा : कभी नहीं।

अविनाश : चाहे मेरी कोई बात कभी तुम्हें बुरी भी क्यों न लगे ?

सुलेखा : हाँ, फिर भी। जैसे अब यही उदाहरण लो। मैं मोज़ा बुन रही थी और तुम कविता पढ़ रहे थे ! और कोई स्त्री होती तो कहती कविता मत पढ़ो, मैं काम कर रही हूँ। कोई बिगड़े-दिमाग़ की होती तो कहती शोर मत करो, मेरे काम में गड़बड़ होती है। लेकिन मैंने एक शब्द भी नहीं कहा।

अविनाश : तो क्या तुम्हें मेरा कविता पढ़ना अच्छा नहीं लगा ?

सुलेखा : नहीं, यह बात नहीं है, लेकिन...बात यह है कि...यानी जब कोई काम करता है न; तो काम...काम ही अच्छा लगता है। काम में कविता कहाँ सूझती है ? कविता तो लोग समय से पढ़ते हैं ...यानी कविता समय से पढ़ी जाती है। [हिचकिचाकर] यानी आप मेरी बात समझे न ?

अविनाश : तो कविता पढ़ने का कौन-सा समय है ?

सुलेखा : कविता पढ़ने का ? कविता पढ़ने का समय...मान लीजिए मैं लॉन पर बैठी हूँ, पान खा रही हूँ, मोज़ा बुन...नहीं नहीं अपने बाल सँवार रही हूँ, उस समय कविता पढ़नी चाहिए, यानी वह समय कविता पढ़ने का है। अब मैं यहाँ काम कर रही हूँ, लेकिन कोई बात नहीं। मैंने आपत्ति तो नहीं की न...?

अविनाश : आपत्ति की बात नहीं है। बात है कविता सुनने की। यह भी तो समझना चाहिए कि जब मैं कविता पढ़ रहा हूँ तो उस समय

कोई काम हाथ में लेना ही नहीं चाहिए। इधर मैं कविता पढ़ रहा था और उधर तुम मोज़ा बुनने बैठ गईं।

सुलेखा : तो मैं बैठी तो तुम्हारे सामने ही रही। उठकर तो कहीं गई नहीं? तुम कविता पढ़ते रहे, मैं सुनती रही। मैंने तुम्हें कविता पढ़ने से तो नहीं रोका, और काम भी क्या? तुम्हारे लिए ही तो मोज़ा बुन रही थी!

अविनाश : धन्यवाद।

सुलेखा : धन्यवाद! क्या मैं कोई ग़ैर हूँ जो तुम मुझे धन्यवाद दे रहे हो?

अविनाश : ग़ैर तो मैं तुम्हें नहीं कह रहा। मैं तो शिष्टता के नाते कह रहा हूँ।

सुलेखा : जिसका तात्पर्य यह है कि अगर मैं किसी काम पर आपको धन्यवाद न दूँ तो मैं शिष्ट नहीं हूँ।

अविनाश : समाज का नियम तो ऐसा ही है।

सुलेखा : तो आप चाहते हैं कि जब-जब आप मुझे कविता सुनाएँ, मैं आपको धन्यवाद दूँ?

अविनाश : मुझे तो धन्यवाद की आवश्यकता नहीं है।

सुलेखा : आपको आवश्यकता नहीं है, किंतु अगर मैं धन्यवाद कह दूँ, तो आपको कोई आपत्ति न होगी?

अविनाश : धन्यवाद में किसे आपत्ति हो सकती है?

सुलेखा : तो दिनभर में आप मेरे लिए जितने काम करें सबके लिए म धन्यवाद कहा करूँ!

अविनाश : तुम चाहे न कहो, किंतु आदत होनी चाहिए।

सुलेखा : तो दिन भर मैं धन्यवाद ही कहती रहूँ। अच्छी बात है। मेरी इच्छा के विरुद्ध कविता सुनाने के लिए भी आपको धन्यवाद।

[हाथ जोडती है।]

अविनाश : सुलेखा, यह बात व्यंग्य से कही गई है !

सुलेखा : इसमें व्यंग्य की कौन-सी बात है ? जो तुमने चाहा, वह मैंने कहा।

अविनाश : तो यह धन्यवाद आपके हृदय से नहीं निकला ?

सुलेखा : आपके लिए चाहे धन्यवाद हृदय से निकले, या न निकले, वह है तो धन्यवाद !

अविनाश : सुलेखा, विवाह के सिर्फ़ तीन महीनों के भीतर ही मैं आपको स्वर से कविता सुनाऊँ और आप मुझे हृदय से धन्यवाद भी न दे सकें !

सुलेखा : और विवाह के सिर्फ तीन महीने बाद मैं मौजा लूटने के लिए बैठूँ और आप मुझे काम न करने दें और यहाँ-वहाँ की कविता सुनाएँ !

अविनाश : आप क्या समझें कि पं. सुमित्रानंदन की कविता कितनी उत्कृष्ट है !

सुलेखा : आपही सिर्फ़ कविता समझ सकते हैं और मैं तो निरी मूर्ख हूँ !

अविनाश : [उठते हुए] कविता न समझनेवाला वास्तव में मूर्ख होता है।

सुलेखा : [दृढ़ता से] तो आपने मुझे मूर्ख भी कह दिया।

अविनाश : मैंने तो उसे मूर्ख कहा है जो कविता नहीं समझता।

सुलेखा : कहते जाइए, मैं मूर्ख हूँ !

अविनाश : तुम तो मुझे बहुत विचित्र मालूम होती हो, सुलेखा ! जरा-सी बात.....

सुलेखा : अच्छा ! मैं विचित्र भी हूँ ! मूर्ख हूँ, विचित्र हूँ ! और क्या-क्या हूँ...?

अविनाश : एक साधारण-सी बात और आप.....

सुलेखा : यह साधारण-सी बात नहीं है, यह समझ की बात है।

अविनाश : तो आप भी मुझे नासमझ कह रही हैं !

सुलेखा : आपकी समझ आपसे जो कहे, उसे समझिए, मैं क्या कहूँ !

अविनाश : तो क्या आपके कहने का मतलब यह है कि जब-जब आप मोजा बुनने के लिए बैठें, तब-तब मैं अपने को समझाए रहूँ कि मैं आपके सामने कविता न पढ़ूँ ?

सुलेखा : तो क्या आप यह भी समझते हैं कि जब-जब आप कविता पढ़ें, मैं मोजा बुनने का नाम भी न लूँ ?

अविनाश : यह तो मैंने कभी नहीं कहा।

सुलेखा : और जब-जब आप कविता पढ़ें, तब-तब मैं आपको अपने... अपने हृदय से धन्यवाद दूँ ! और सदैव धन्यवाद दूँ !

अविनाश : यह भी मैंने कभी नहीं कहा।

सुलेखा : आपने नहीं कहा तो मैं झूठ बोल रही हूँ। ठीक है, मैं मूर्ख हूँ, मैं विचित्र हूँ और अब मैं झूठ बोलने वाली भी हूँ !

अविनाश : फिर आप उसी बात पर जाती हैं। उसे दोहराने की आवश्यकता ?

सुलेखा : यानी आप यह सब मान रहे हैं कि मैं मूर्ख हूँ, विचित्र हूँ और झूठ बोलनेवाली हूँ। यही आपका प्रेम है, यही आपका व्यवहार है !

अविनाश : मैंने क्या बुरा व्यवहार किया ?

सुलेखा : जिस पत्नी को आए तीन महीने से अधिक नहीं हुआ, उसे पति मूर्ख, विचित्र और झूठ बोलनेवाली कहे, यह व्यवहार ठीक कहा जा सकता है ?

अविनाश : आप तो व्यर्थ बातें बढ़ा रही हैं !

सुलेखा : अच्छा, व्यर्थ बातें बढ़ानेवाली भी कह लीजिए। कहते जाइए। आपके साहित्य में जितनी भी गालियाँ हैं, उन सबों को आज ही मेरे सामने कह डालिए। [एक दबी हुई सिसकी]

अविनाश : मुझे यह सब अच्छा नहीं मालूम होता, सुलेखा !

सुलेखा : आपको क्यों अच्छा मालूम होगा ! आपकी फुलवारी में तो

फूल ही फूल हैं, काँटा एक भी नहीं। यही कहा था न? यहाँ इतने काँटे हैं कि केवल तीन महीनों ही में वे सब तरफ़ से चुभने लगे।

अविनाश : मैं नहीं कह सकता कि मैं जीवन में आपको कभी समझ सकूँगा!

सुलेखा : और अभी दो क्षण पहले कह रहे थे कि 'मैं तुम्हें बहुत अच्छी तरह समझता हूँ। हम लोगों का जीवन ऐसा ही है जैसा इस फूल-दान म लगे हुए चमेली और गुलाब के फूलों का।' यह जीवन है! [फूलदान के फूल निकालकर फेंक देती है।] 'हम लोग अपने वैवाहिक जीवन में बहुत सुखी हैं, जैसा सुखी शायद ही कोई संसार में होगा।' कौन झूठ बोला—मैं या आप?

अविनाश : और क्या आपने भी अभी दो मिनिट पहले यह नहीं कहा था कि 'मेरा सुख साकार होकर मेरे सामने है और मैं उसकी आँखों में आँख मिलाकर कह रही हूँ कि तुम मेरे हो और मैं तुम्हारी हूँ।'

सुलेखा : आपने कहलाया, तो मैंने कहा!

अविनाश : और क्या आपने अभी मुझ से बग़ैर कहलाये यह नहीं कहा था—'अगर कोई लहर से पूछे कि तूने तट को छूकर कितना सुख पाया तो वह मेरी ओर संकेत कर देगी।' कौन झूठ था—मैं या तुम?

सुलेखा : [व्यथित होकर] तुम...तुम...धोखा तो मैंने खाया! मैं नहीं जानती थी कि आप इतने कठोर हैं, इतने झूठे हैं! मैं व्यर्थ ही ठगी गई!

अविनाश : तो क्या वे सब बातें झूठ हैं, जो आपने मेरी प्रशंसा में कहीं?

सुलेखा : जैसे जो बातें आपने मेरी प्रशंसा में कहीं वे सब सच ही हों! जब पति-पत्नी एक दूसरे को समझ ही नहीं सकते तो उन्हें अलग हो जाना चाहिए। [व्यंग्य से] हिंदू धर्म, हिंदू धर्म! लोग बड़ी तारीफ़ करते हैं, लेकिन यह इतना गया-बीता धर्म है कि इसमें संबंध-विच्छेद के लिए कोई स्थान ही नहीं है।

अविनाश : बहुत आगे मत बढ़ो, सुलेखा ! मैं तो समझता था कि हम लोग बहुत सुखी हैं।

सुलेखा : यह आप अपने ही संबंध में कहें, मेरे संबंध में नहीं। मैं तो एक ऐसे इंद्रजाल में फँस गई हूँ, जहाँ से सिर्फ़ मरकर ही निकल सकती हूँ !

अविनाश : तो क्या आप समझती हैं कि यह हानि केवल आप की ही हुई है ? मेरी आप से अधिक हानि हुई है। मेरा सारा गृहस्थ-जीवन ही नष्ट हो गया ! मैं संसार में क्या उन्नति करूँगा, जब मेरे कलेजे पर ऐसी चोट लगी है जो दिनोंदिन भरने के बजाय और भी गहरी होती जाती है। जिसके घर में ही आग लगी हो वह विश्राम कहाँ पा सकता है ?

सुलेखा : [व्यंग्य से] और मैं फूलों की सेज पर सो रही हूँ !

अविनाश : आपही ने तो यह आग लगा रक्खी है। आदमी विवाह करता है अपने जीवन की सुख-शांति के लिए। यहाँ विवाह होता है रही-सही सुख शांति के नष्ट करने के लिए। [दृढ़ता से] यह विवाह का सुख है, जहाँ छोटी-छोटी बातों पर कुढ़ना पड़ता है !

सुलेखा : [तीव्रता से] आप मुझे क्या समझते हैं, और अपने को क्या समझते हैं ? क्या आप ईश्वर के अवतार हैं ? सारे दोष मेरे हैं और आप बिलकुल निर्दोष हैं !

अविनाश : हाँ, हाँ, सारे दोष आपके हैं। मैं तो सीधी तरह कविता सुना रहा था, बीच में आप ने ही यह बखेड़ा खड़ा कर दिया। आप ही ने मुझे धोखा दिया है, आप ही ने मुझे अपमानित किया है। आप..... आप.....

सुलेखा : [उठ खड़ी होती है।] आप मुझ से किस तरह की बातें करते हैं ! आपको इसकी तरह बातें करने का क्या अधिकार है ?

अविनाश : [कुछ आगे बढ़कर] और आप मुझ से किस तरह की बातें कर रही हैं ?

सुलेखा : क्या आप मुझ से लड़ना ही चाहते हैं ? आप किस तरह के आदमी हैं ? मैंने अभी तक नहीं समझा था कि जिसके साथ मेरा विवाह हुआ है वह सचमुच ही...वह सचमुच ही.....

अविनाश : सचमुच ही, सचमुच ही...क्या ? मैं सचमुच ही क्या हूँ ?

सुलेखा : झगड़ालू, धोखेबाज़, निर्दयी और...और...

अविनाश : सुलेखा, अपनी ज़बान क़ाबू में रक्खो, मैं ऐसी बातें सुनने का आदी नहीं हूँ !

सुलेखा : मैं भी ऐसी बातें सुनने की आदी नहीं हूँ। ऐसे विवाह पर धिक्कार है, जहाँ पुरुष अपनी स्त्री से मनमानी बातें कह सकता है। क्या तुमने मुझे अपनी कोई बाँदी समझ रक्खा है कि समय-कुसमय में तुम्हारी कविताएँ सुना करूँ और हँसो तो तुम्हारे साथ हँसी करूँ ?

अविनाश : मैं भी ऐसी स्त्री की कोई क़ीमत नहीं करता, जो अपने काम में अपने को इस तरह उलझा ले कि दीन-दुनियाँ की खबर भी उसे न रहे। कोई प्रेम से उसके सामने कविता पढ़े और वह मौज़ा बुनने से अपनी नज़र भी ऊपर न उठाए। जो अपने आप को इस तरह समझे कि उसके सामने पति की कोई हस्ती ही न रहे !

सुलेखा : [उग्रता से] पति...पति...पति...पति क्या कोई भूत है, जो हमेशा सिर पर बैठ कर बोले ? पति...पति...सुनते-सुनते थक गई।

अविनाश : क्या आपकी यह मजाल कि आप मुझे इस तरह अपमानित करें ?

सुलेखा : क्यों, आप मेरा क्या कर लेंगे ? मैंने ग़लती की कि अपनी शादी आप से हो जाने दी। आपसे...आप से.....

अविनाश : तो अब उस ग़लती का प्रायश्चित कर डालिए।

सुलेखा : हाँ, मैं प्रायश्चित करूँगी। अब इस तरह ज़िन्दगी नहीं बिता सकती। आत्महत्या करूँगी, मर जाऊँगी। ऐसे व्यक्ति के साथ रहना घोर पाप है जो.....

[कहते-कहते बाहर निकल जाती है।]

अविनाश : [सिर हिलाकर] आत्महत्या करेगी ! आत्महत्या करना आसान बात है ! ऐसे आत्महत्या करनेवाले बहुत देखे हैं ! मेरा सारा गृहस्थ-जीवन चौपट हो गया । [टहलते हुए]...बात-बात पर झगड़ा, बात-बात पर बहस...! ऐसे मैं इनके नाज़ कहाँ तक उठाऊँगा...! देख चुका...! बहुत हो चुका...! इनके सामने मैं कोई चीज़ ही नहीं रहा...! कहती हैं 'क्या कर लेंगे आप...!' मैं तो वह कर सकता हूँ कि ज़िन्दगी भर याद बनी रहेगी । सुलेखा...यह मेरे जीवन का चित्र खींचेगी, या उस पर स्याही डाल देगी... ...!

[सुलेखा शीघ्रता से लौट आती है ।]

अविनाश : क्यों ? क्यों लौट आई ? आत्महत्या नहीं की ?

सुलेखा : मैं क्या आत्महत्या करने से डरती हूँ ? ज़रूर करूँगी । ऐसे व्यक्ति के साथ नहीं रह सकती जो क़दम-क़दम पर पत्नी को लांछित करता है । मैं अभी ही आत्महत्या करती, लेकिन मेरे सिर में इतने ज़ोर का दर्द है कि मैं इस समय आत्महत्या करने की बात ही नहीं सोच सकती । सिर का दर्द कम होने दीजिये और देखिये कि मैं आत्म-हत्या करती हूँ या नहीं !

अविनाश : कर चुकीं आत्महत्या ! मुसीबत तो मेरी है कि मैं इस तरह ज़िन्दा हूँ ! ज़िन्दा हूँ ! ज़िन्दा रहते हुए भी मृतक के समान हूँ ! घर में मेरी कोई इज़्ज़त नहीं, बाहर क्या इज़्ज़त होगी, ख़ाक ! पत्नी का रुख़ देखकर चलो तो हँस सकते हो, नहीं तो झगड़ालू, धोखेबाज़ और निर्दयी...!

सुलेखा : हाँ, हाँ, झगड़ालू, धोखेबाज़, निर्दयी और...और कायर !

अविनाश : कायर ! किस बात में कायर ?

सुलेखा : कायर ! कायर इस बात में कि मैं आत्महत्या करने के लिये आगे बढ़ी और आपमें शक्ति नहीं थी कि मुझे एक क़दम बढ़कर रोक सकते और कहते कि नहीं-नहीं आत्महत्या मत करो ! खड़े रहे

पत्थर की तरह। दुम दबाकर भाग जाते तो और भी अच्छा होता।

अविनाश : मैं कभी दुम दबाकर भागा भी हूँ ? भागे होंगे आपके भाई-बंद।

सुलेखा : देखो अविनाश, तुम मुझे कुछ कह सकते हो, लेकिन मेरे भाई-बंदों का नाम भी नहीं ले सकते !

अविनाश : क्यों ? क्यों नहीं ले सकता ? किसी ने मुझे कुछ दे दिया है ?

सुलेखा : तुम इस लायक़ ही नहीं हो कि कोई तुम्हें कुछ देता।

अविनाश : देखो, सुलेखा ! तुम मुझे बहुत अपमानित कर चुकीं। अपमान सहते-सहते मैं अंतिम सीमा तक पहुँच गया हूँ।

सुलेखा : [झुझलाकर] अंतिम सीमा ! बहुत धमकी देते हो। देख चुकी ऐसी धमकी।

अविनाश : किसी धमकी ? क्या तुम मुझे इतना कमज़ोर समझती हो कि मैं कुछ कर ही नहीं सकता ? मैं तो वह कर सकता हूँ कि.....

सुलेखा : क्या कर सकते हो ? आज तक कुछ करके दिखाया होता !

अविनाश : क्या देखना चाहती हो ? मेरी मौत ?

सुलेखा : उसे देखकर मुझे क्या मिल जायगा !

अविनाश : मिले, चाहे न मिले। मेरे न रहने से तुम सुखी तो हो जाओगी।

सुलेखा : हो चुकी सुखी ! मेरे भाग्य में सुख कहाँ ?

अविनाश : तो चाहती हो कि मैं मर जाऊं ! अच्छी बात है, अभी सही। गंगा किसलिए बह रही है, यमुना इतनी गहरी क्यों है ? उसमें कूदकर मैं अपनी ज़िन्दगी खत्म कर सकता हूँ ! फिर बैठी रहना सुख से। मैं अभी जाता हूँ ! [शीघ्रता से प्रस्थान]

सुलेखा : [दोहराते हुए] गंगा किसलिए बह रही है, यमुना इतनी गहरी क्यों है ! जैसे इन्हीं के डूबने के लिए ! सैकड़ों वर्षों से वह इसीलिए

बह रही है कि अविनाशजी उसमें कूदकर आत्महत्या करें । गृहस्थ-जीवन का मुझे यह सुख है... ...! बाबूजी तारीफ़ करते थे—लड़का इतना अच्छा है...! लड़का उतना अच्छा है ! देखने में, पढ़ने में, बातें करने में, शील में । यह है शील और ये हैं बातें ! मुझे जलती हुई आग में फेक दिया.....! इसीलिए मैंने जन्म लिया था कि ऐसी-ऐसी बातें सुनूं और सहूँ... ... [गहरी सिसकी]

[अविनाश लौटकर आता है ।]

अविनाश : [अपने आप] चारों ओर घोर अंधकार !

सुलेखा : क्यों, लौट क्यों आए ? आत्महत्या नहीं की ! गंगा तो अभी तक बह रही है, यमुना तो अभी तक गहरी है !

अविनाश : [अभिमान से] क्या तुम समझती हो कि मैं आत्महत्या नहीं कर सकता ? मैं अभी ही गंगा में डूबकर प्राण दे देता, लेकिन बाहर काले-काले बादल उठे हुए हैं । पानी बरसने वाला है । अंधेरा इतना ज़्यादा है कि रास्ता ही नहीं सूझता । सुबह होने दो और देखो, मैं आत्महत्या करता हूँ, या नहीं !

सुलेखा : बहुत अच्छा ! सुबह आप ज़रूर कर लीजिए । फिर मुझ से भी जो कुछ करते बनेगा कर लूँगी !

अविनाश : कर लीजिएगा । [अपना हृदय दबाकर] उफ़ !

सुलेखा : क्यों, क्या हुआ ?

अविनाश : परसों मेरी छाती में दर्द था । अभी बाहर गया तो ठंडी हवा लगने से और भी बढ़ गया । [अपना हृदय दबाकर] उफ़ !

सुलेखा : छाती में दर्द हुआ करे, किसी को पता न चले, तो कोई क्या दवा करे ?

अविनाश : जैसे आपको पता चलता, आप दवा कर ही तो देतीं !

सुलेखा : क्यों दवा करने में क्या हर्ज था ? मुझे परसों मालूम हो जाता तो मैं दवा ज़रूर लगा देती ।

अविनाश : क्या दवा थी जो आप लगा देतीं ?

सुलेखा : जैसे मेरे पास कोई दवा ही नहीं है ! शादी में प्रोफ़ेसर प्रसाद ने दवा का जो सेट प्रेज़ेंट किया था वह किस दिन काम आता ?

अविनाश : जैसे वह आज ही काम आता और उससे फ़ायदा हो ही जाता !

सुलेखा : फ़ायदा क्यों नहीं होता ? मेरा सिर-दर्द दर्जनों बार उससे अच्छा हुआ है ।

अविनाश : लेकिन दर्द तो मेरी छाती में हो रहा है, सिर में नहीं ।

सुलेखा : वह छाती के दर्द पर भी आज़माई जा सकती है । यह मैं आपका अंतिम काम कर रही हूँ । [सुलेखा जैसे ही आगे बढ़ती है, गिरेहुए फूलदान से उसे ठोकर लगती है और वह आह भर बैठ जाती है ।]

अविनाश : [आगे बढ़कर] क्या हुआ ? ठोकर लगी क्या ? कहां लगी ?

सुलेखा : [वेदना के स्वर में] आह् !

अविनाश : [समीप आकर सुलेखा पर झुककर] कहाँ चोट लगी, कैसी चोट लगी ? [समीप पहुँच जाता है ।]

सुलेखा : [प्रकंपित स्वर में] नहीं लगी, नहीं लगी । [सिसकियां भरने लगती है ।]

अविनाश : [द्रवित होकर] सुलेखा, सुलेखा, मेरे ही कारण तुम्हें चोट लगी । सचमुचही मैं बड़ा निष्ठुर हूँ । अपनी प्रिय सुलेखा को इतना कष्ट...! [झुककर] देखूँ, कहाँ चोट लगी है ?

सुलेखा : [पैर हटाकर,] कहीं चोट नहीं लगी...! ओह, तुम मुझ से बहुत नाराज़ होगए ।

अविनाश : नहीं, नहीं, सुलेखा ! मैं तुम पर बिल्कुल नाराज़ नहीं हुआ ! वह तो बातों ही बातों में कुछ बातें मेरे मुख से निकल गईं, नहीं तो मैं अपनी सुलेखा को कहीं आधी बात भी कहता हूँ !

सुलेखा : नहीं, नहीं। क़ुसूर मेरा ही है। मैंने ही तुम से कड़ी बातें कीं। मैंने ही तुम को अपमानित किया।

अविनाश : नहीं सुलेखा, यह सब मेरा ही अपराध था। उठो, सोफ़ा पर बैठ जाओ, [सहारा देकर अविनाश सुलेखा को सोफा पर बिठलाता है। थोड़ी देर के लिए दोनों ही मौन रहते हैं।]

सुलेखा : [अस्फुट शब्दों में] तुम मुझ से नाराज़ हो ?

अविनाश : और तुम मुझ से नाराज़ हो ?

सुलेखा : नहीं, बिल्कुल नहीं। और तुमने मुझे क्षमा कर दिया ?

अविनाश : तुम्हारा अपराध ही क्या है, अपराध तो मेरा है।

सुलेखा : नहीं, अपराध मेरा है, सारा अपराध मेरा है।

अविनाश : यह मैं नहीं मानूँगा। बात मैंने बढ़ाई थी।

सुलेखा : बात तुमने भले ही बढ़ाई हो, लेकिन कड़ी बातें तो मैंने ही तुमसे कही थीं।

अविनाश : ख़ैर, मैं उन बातों का बुरा बिल्कुल नहीं मानता।

सुलेखा : और मैंने भी कहाँ बुरा माना !

अविनाश . तो अब तो हम लोगों में कभी विरोध न होगा ?

सुलेखा : कभी नहीं। हम लोग एक दूसरे के हृदय को अच्छी तरह समझ गए हैं। तीन महीने में भी क्या हम लोग एक दूसरे को नहीं समझ सके ?

अविनाश : नहीं, हम लोग एक दूसरे को अच्छी तरह समझते हैं। और विरोध तो तब हो, जब मेरी बात तुम्हें अच्छी न लगे, या तुम्हारी बात मुझे अच्छी न लगे।

सुलेखा : नहीं, हम लोगों में से किसी को किसी की बात बुरी नहीं लगती।

अविनाश : अब तुम्हारे सिर का दर्द कैसा है ?

सुलेखा : अब अच्छा है ! और तुम्हारी छाती का दर्द कैसा है ?

अविनाश : वह भी अब ठीक हो गया !

सुलेखा : बस, ठीक है !

अविनाश : अब सिर-दर्द अच्छा हो जाने पर आत्महत्या तो न करोगी ?

सुलेखा : [हँसकर] क्यों आत्महत्या करूँगी ? क्या तुम्हारे रहते मुझे आत्महत्या की जरूरत होगी ?

अविनाश : [हँसकर] यानी, मैं तुम्हें इतनी तक़लीफ़ देता हूँ कि वह आत्महत्या के बराबर है ।

सुलेखा : [हँसकर] नहीं, यह मेरा मतलब नहीं । यह घर इतना अच्छा है कि इसे छोड़कर आत्महत्या करने की तबियत किस की होगी ? और तुम...तुम छाती का दर्द कम होने पर गंगा में डूबने तो नहीं जाओगे ?

अविनाश : तुम्हारे प्रेम-सागर में डूबकर कौन गंगा में डूबने की चेष्टा करेगा, सुलेखा ?

सुलेखा : तुम बहुत अच्छे हो, अविनाश !

अविनाश : और सुलेखा, तुमसे अच्छी स्त्री मैं सौ जन्म में भी नहीं पा सकता !

सुलेखा : मुझे लज्जित मत करो, अविनाश ! ओह, हम लोग एक दूसरे को कितना अच्छा समझते हैं !

अविनाश : हम लोग कितने सुखी हैं, सुलेखा !

सुलेखा : हम लोगों का वैवाहिक जीवन वास्तव में कितना सुखकर है !

अविनाश : [गिरे हुये फूलदान और फूलों को लक्ष्यकर] उस चमेली और गुलाब के फूल की तरह !

सुलेखा : हाँ, बिल्कुल इन फूलों की तरह [जमीन से गुलदस्ता उठाकर मेज पर सजाती है ।]

सुलेखा : मैं तुमसे एक प्रार्थना करूँ ?

अविनाश : हाँ, हाँ, कहो ! क्या चाहती हो ?

सुलेखा : मेरी प्रार्थना अवश्य मानोगे ?

अविनाश : जरूर मानूँगा। आज्ञा दो।

सुलेखा : पं० सुमित्रानंदन पंत की वह कविता सुनाओगे ? '**तुम्हारी आँखों का आकाश !**'

अविनाश : जरूर सुनाऊँगा। और तुम भी मेरी एक प्रार्थना मानोगी ?

सुलेखा : इसमें भी कोई संदेह है ?

अविनाश : नहीं, वचन दो, मानोगी ?

सुलेखा : मैं वचन देती हूँ।

अविनाश : जब मैं कविता पढ़ूँ तो तुम मेरे लिए मोज़ा बुनती जाओगी ?

सुलेखा : अवश्य।

[अविनाश मोजा बुनने का सामान टेबिल से उठाकर सुलेखा के हाथ में देता है।]

सुलेखा : हाँ, तो तुम कविता पढ़ो और मैं मोज़ा बुनती जाऊँगी।

अविनाश : वही कविता ?

सुलेखा : हाँ, वही आँखों के आकाश की कविता।

अविनाश : अच्छा तो सुनो। [सुनाने की मुद्रा में]

सुलेखा : ज़रा, अच्छे स्वर से सुनाना।

अविनाश : [स्वर से] **तुम्हारी आँखों का आकाश;**
सरल आँखों का नीलाकाश,
खो गया मेरा खग अनजान;
मृगेक्षिनि ! इनमें खग अनजान !

[अविनाश यह कविता हाव-भाव से सुनाता है और सुलेखा मोजा बुनती है।]

[धीरे-धीरे परदा गिरता है।]